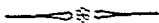


प्रकारक—
रत्नाश्रम, आगरा ।



मुद्रकः—
पं० चन्द्रहंस शर्मा 'विद्य
रत्नाश्रम आ० छा० वि० बरसे,

नाटक के पात्र



पुरुष

रामचन्द्र—करोड़ों के सुपुत्रों

राज

बलराम } राज के भाई
लक्ष्मण }

शत्रुघ्न—राज के खलु, मित्रित-

भय

महाबली—करोड़ों के मित्र

जहूँ—एक शूर वरुणों

जिजीवि—एक शूरी

अयोध्या } राजा के
राजदरबार } मित्र

शत्रु } राज के दुश्मन

शत्रुघ्न—करोड़ों के दुश्मन

शत्रुघ्न—करोड़ों के

शत्रुघ्न—करोड़ों के

दुश्मन, शत्रुघ्न, शत्रुघ्न, शत्रुघ्न, शत्रुघ्न, शत्रुघ्न

शत्रुघ्न—करोड़ों के, शत्रुघ्न, शत्रुघ्न, शत्रुघ्न, शत्रुघ्न

स्त्रियाँ

सीता—राज की पत्नी, कनका

वासुदेवी—सीता की महती कनका

आश्रिता—एक महती कनका

श्रीरामिका—राज की कनका

कनका }

दुश्मनी }

महाबली }

शत्रुघ्निका—दुश्मनी, कनका की कनका

शत्रुघ्निका—दुश्मनी, कनका की कनका

शत्रुघ्निका—दुश्मनी, कनका की कनका

६ श्लो ७

समर्पण

जिन का अश्रुत-धर अनुग्रह बखेनातीव है, जो मानव-शरीर
में प्रेम और दया के नाजादु अवतार थे,
जिन से इत जन्म में तो क्या जन्मान्तर
में भी उच्छ्रय नहीं हो सकता,
उन्हीं वैकुण्ठ-वासी पवित्र-हृदय

श्री गुरुदेव

रां

ए अरिश्चन भेट

नम्रेन नादर नमसिंत है ।

—मत्यनागायण





कालिदास को मुनाया तो उसे मुनकर वह अत्यन्त विन्मित हुए और आनन्दमग्न हो उसे नाय के रूप में धन्य-धन्य कहने लगे। उन्होंने केवल प्रथम अंक के सत्ताईसवें श्लोक के अंतिम-चरण 'अविदित्र गतयाना रात्रिष्वं प्यरंसीद' में भवभूति को सूचित किया "एवं" पद के स्थान में "एव" पद प्रयुक्त किया जाय तो अर्थ विशेष शोभाप्रद होगा। मुना जाता है कि उन्होंने इसे स्वीकार किया और अबतक उक्त श्लोक में वही पाठ चला आता है। इस मतोरुद्ध कथा में कोई ज्ञान धनमन्त्र नहीं जान पड़ता क्योंकि इस नाटक की योग्यता ऐसी ही है कि शकुन्तला नाटक लिखने वाला भी उसे शिरोधार्य करे। नाय ही कालिदास की विशाल बुद्धितया निरभिमानता का भी अच्छा परिचय मिलता है।

इस किन्ददन्ती के अनुसार पहले लोग भवभूति को कालिदास का समकालीन मानते हैं; किन्तु इसके विरुद्ध प्रचुर प्रमाण हैं:—

१-प्रथम तो कालिदासकी कीर्ति प्राचीनकाल में ही आवाल-वृद्धों को विदित है और भवभूति को केवल पण्डित लोग ही जानते हैं। यदि वह कालिदास के समय में हुए होते तो जिन लोगों ने शकुन्तला तथा विक्रमोर्वशी की प्रशंसा की है उन लोगों ने उत्तर-राम-चरित और मालती-नायक की प्रशंसा भी की होती।

दूसरे कालिदास के समय की सरल स्वाभाविक रचना-शैली में भवभूति का रचना-क्रम बहुत ही भिन्न है।

‘सुरभिणःसुसुमस्य सिद्धा भृञ्जिम्पतिर्नपरस्वतादिनानि’ ‘याते
नियम को भूलकर जब लोग किन्ती प्रचंड प्रन्थकार की श्रवणा
किया चाहते हैं तब उस स्वापमान को घोर यत्रणा में व्याकुल हो
कर उसे अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए आत्मप्रशंसा के
अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं सूझता । भवभूति की भी यही
दशा हुई होगी; आत्मकवित्त्व का उन्हें बड़ा दृढ़ विश्वास था,
उनका यह सुदृढ़ निश्चय, निन्दकों की श्रवणा व अपने प्रन्थों
की यथेष्ट न्याति न होने में अथवा इस भय में कि कदाचित् वे
नष्ट न हो जायें, किंचित् भी न हटा । अपने समय के लोगों की
निन्दा में हतोत्साह न हो उन्होंने भावीकाल ही पर भरोसा रक्खा
और “भविष्य में सत्कृति अभिनन्दित होगी ” यह उन्होंने भविष्य
कथन किया (चिप०) इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप उन्हीं का
घनाया एक श्लोक उद्धृत किया जाता है:—

“ये नाम केचिदिह नः प्रथवन्म्यवज्ञां,
जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैव यतः ।
उत्पस्यतेऽस्ति मम कोऽपिः समानधर्मा
कालोद्ययं निरवधिक्विपुला च पृथ्वी ।”

(मालती-माधव नाटक)

अन्तु, इसमें यही प्रतिपादित हुआ कि
आत्म-विषयक लेख दृपणार्ह नहीं हैं किन्तु ।
आत्मश्लाघा न कह कर आत्मगौरव कहना
होता है क्योंकि आत्मयोग्यता के ज्ञान पर हं

⊗ पाठान्तर—“उत्पस्यतेममनुकोऽपि”

४. सुहृदता—घात, कुछ भी उपकार न करे किन्तु ये अपने सुहृद को अलौकिक धन्यु समझते हैं। गद्गद् भाव में पुरित होकर आपने कहा है कि—

“यत् कष्टं न करं तत् सर्वदा; कसि मर्माप सर्वं विपदा हरं ।

सुहृद जो बहूँ जानु जहान में, कसिस सो तिरि जीवन-मूरि है ॥११

(६-५)

५. सहृदयता—कवि का प्रधान गुण सहृदयता है। हृदय की शृंगार, धीर, परुणादि जो भिन्न भिन्न वृत्तियाँ हैं वे उसे अत्यन्त नूतन एवं स्पष्ट रूप से अनुभूत होनी चाहिए। उक्त भिन्न भिन्न वृत्तियों का विषय इन्द्रियगोचर होते ही कवि का मन लुब्ध हो जाना है और उन लुब्धता के आघेग में उसके मुख से जो बातें निकलती हैं वही यथार्थ कविता है। तात्पर्य यह है कि कवि का हृदय ऐसा होना चाहिए जिसमें भिन्न भिन्न मनोवृत्तियाँ पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो जाय। यह नियम भवभूति की कविता में सर्वत्र परितार्थ हो रहा है, उनका मन अत्यन्त निर्मल एवं प्रेमी है वैसे ही स्वभाव नितांत सरल अथवा गम्भीर होने के कारण जिस प्रसंग का श्लोक देखिये मानो रस उस से टपका पड़ता है। इसमें विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए उत्तर-राम-चरित नाटक में राम-वामंती-सम्वाद, लव-चन्द्रकतु-वार्त्तालाप तथा राम-लव-कुश-सम्मेलन आदि का वर्णन पढ़ना उचित प्रतीत होता है।

६. मन की शुद्धता—बहुतेरे चूंगंपियन विद्वान् संमृत कविता को यह दोष लगाते हैं कि उसमें शृंगार का उद्भव शुद्ध प्रेम रस ने किया हुआ नहीं पाया जाता, किन्तु अधिकांश में यह काम-

उपर्युक्त ही न करने के कारण कदम बँधा करने की नीयत और कदमों नमनने के कारण भवभूति करने के कृत्याद्य न बन सके। उनके मंत्रों एवं उक्त मन्त्र की सामर्थ्य होकर विभवतुल्य करने की शक्ति प्रदानकता ही में स्वयं उक्त कृष्ण की शक्तियों को निरन्तर रखना अधिकतर समझा होगा। वेला मंत्र होता है। किसी साधकपर से उनका पर्याप्त समझ न होने के कारण उनके मन्त्र की शक्तिक्रम में कृष्ण कदम नहीं पड़ें और इन कदमों ही कि मन्त्र कारण है कि उनके सुकृत-वर्तन में ऐसी कृष्ण शक्तिक्रम, शक्ति पर्याप्तता प्रदानकता होती है।

५. विद्वान्—कदम कदम के मन्त्र एवं शक्तियों में उनकी शक्ति होती ही। उदाहरणतया श्रीकृष्ण-शक्ति-व्यापक-विद्यो से उक्त-विद्यो विद्वान्-कदमों द्वारा उनका मन्त्र शक्ति बनना। उनकी शक्ति से भली भाँति मन्त्र होता है कि वे उक्त-कदम, मन्त्र, शक्तियों शक्ति-वर्तनों के कदमों पर-परिधि। इस मन्त्र में मन्त्र-मन्त्र पर विद्वान्-कदमों के कदमों-कदमों के मन्त्र का प्रयत्न प्रयत्न है। और उक्त कदमों शक्तियों के वर्तन से कदमों-कदमों पर उनका अधिकतर विद्यो-वर्तन है। इनके मन्त्र-मन्त्रों कि भवभूति कदमों कदमों के कदम-पर-परिधि-विद्यो-वर्तन होता है और इसी कारण मन्त्र-वर्तन में वे मन्त्र-वर्तनों में परिचित-विद्यो-वर्तन है। इनकी विद्वान्-शक्तियों से इनका विद्वान्-विद्यो-वर्तन प्रयत्न है।

६. सामर्थ्य-विद्यो—और उक्त-विद्यो-कदमों की शक्ति इनका मन्त्र-वर्तन नहीं है। इनके मन्त्रों के कदम-पर-परिधि से ही

कराया है। केवल रामचन्द्र जी ही प्रजा के सन्तुष्ट करने की चेष्टा में अपना सर्वस्व न्यौद्धावर करने को उद्यत नहीं हैं (अंक १-१२) वरन् जिनके बुद्धिबल से राजकाज चलता था और जिनको किसी प्रकार के स्वार्थ साधने की कामना नहीं थी उन्हीं रघुकुल के आचार्य कुलगुरु वशिष्ठ की राम के लिए आज्ञा थी कि:—

“तुव धर्मं नित्यं प्रजानुरंजनं निजं प्रमादं विहाय ।

तज्जनित-यस-धनं प्रचुरं ही रघुवंसं कीं प्रभुताय ॥”

(१-११)

इनकी आज्ञा का श्री रामचन्द्रजी ने अक्षर अक्षर पालन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक सामाजिक समालोचकों की दृष्टि में राम का सीता-निर्वासन कार्य अमानुषिक प्रतीत होता है किन्तु यदि प्रजानुरंजन कर्त्तव्यकर्म की प्रधानता को—जिसका उल्लेख कवि ने राम के मुख से कराया है—निरपेक्ष भाव से विचारा जाय तो राम क्षन्तव्य हैं। लोकमत को उल्लंघन करने का संकल्प राम को स्वप्न में भी नहीं होता। राम जानते हैं कि जब राजोपचार प्रचल होता है तभी प्रजा कातर-कण्ठ से अपनी मर्णा सम्मति का उद्गार उगलती है। पीड़ित प्रजा को उम निस्स्वार्थ सम्मति के अनुसार कार्य करना राजा का प्रधान कर्त्तव्य है।

जामु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अचरि नरक अधिकारी ॥

(कुलसीदास)

राजनैतिक विचारों में ऐसे धार्मिक विचारों का नियोजित करना युक्तियुक्त है या नहीं इसके निराकरण कार्य से इस विषय का विशेष सम्वन्ध नहीं है, किन्तु इतना अवश्य कहना

पड़ता है कि उस समय के राजाओं की शासन-प्रणाली उस प्रकार के गुण व दोष में (आजकल के समालोचकों की समझ में जैसा कुछ हो) अथर्व प्रयुक्त रहती थी। ऐमा संस्कार उनके हृदय में बगवत्प्रसाद से ही अंकुरित होता रहता था। उस समय की शिक्षा शैली ऐमा उपदेश देती थी।

जो लोग सती सीता के दुःख से कातर होकर राम को यह दोष लगाने हैं कि उन में मानसिक बल नहीं था क्योंकि ऐसी छोटी छोटी बातों में प्रजा का मन्वुष्ट और प्रसन्न करने के लिए उन्होंने इतनी उम उकण्ठा प्रकट की थी। ऐमा समझने वाले अपनी अनुदार आत्मापना में महागज मर्त्यादापुरपोत्सव राम के अनुभव आत्म-न्याय के मौन्दर्य को नष्ट भ्रष्ट करने का प्रयत्न करने हैं। राम स्वयं जानते थे कि सीता निर्दोष है और उन्होंने उस निरपराधिता को देश निकाला देकर चार धूमिल कार्य किया है। उनके ही विलाप में यह भाव विदित होता है और यह आत्म-गतानि की अन्तर्गतत्व में दितना चलने से यह पर-पर-पर प्रकट होता है। इन्होंने सीता निर्बलिनजनित पश्य का प्रायश्चित्त अपनो विलाप में किया है। कवि ने तमसा के मूर में टांक फलसाया है :—

“अपदि दुर्ग महान गर्व भर, प्रव निहायन तन्मु प्रतिश्रिया।
विदुज मोह-म्या-मंदिह तथा, इतन धीमज को मरुफाय है : १”

(३२६)

There sorrow wote the grief that does not break
The hope the ever bright heart and the crown

अस्तु जब हम नृत्य-कर्त्तव्य-पालन कसौटी पर राम के सौवा निर्वानन-कार्य की परीक्षा करते हैं तो उनके अद्भुत आत्मत्याग और अनुपम धीर गम्भीर उदार भाव के अनन्त पारिवार में उक्त भ्रमानक बलहृ-शक्तिना अनन्त धार धुल जाती है।

एक घन और भी ध्यान देने योग्य है—कि प्रजातुरब्जनवापों में राम की जी भरकर रोने का भी तो अवकाश न मिला। चाहे जैसे ही घोर शोक का समय हो राम ने कर्त्तव्य-पालन को ही प्राधान्य दिया है। जब उन्होंने सुना कि यमुना तट पर नर करने वाले तरन्वियों को नवरत्नतुर ने मराया है तो राम मद रोना-घोना भूल गये और उस अतुर के दय का प्रदर्श करने में जा लगे। फिर एक शाक्य ने एक मरा लड़का राजद्वार पर पटक कर योंही दुःख मचाई और जान गवाही हुई उसी समय राम ने अपने शोक को भूलकर शक्य के नामों से शिष्ट प्रयत्न कर दिया। इन घातों में भलोंनीति प्रकट है कि प्रजाति के लिए राम अपने सुख-दुःख की हवा भी पराई न करते थे।

राम का कर्त्तव्य-पालन-व्यवहार राम का माता है कि सीता को निहायने में राम की विवनी प्रकृति थी, जिस धर्ममय में पौन कर राम ने वह राम बन पड़ा था। अतृप्त मनाह-सुधारकों के शुक वाद-विवाद तथा वर्ध मय-विवर्ध में पद कर वैरा-भाव की परिबर्धित हवा का प्रायोजन हृदय मयि में होने कर विद्वान्वेद करना अपने प्रयत्न मय में भटक जान है। भवमृति के राम ने अपने जीवन में 'वदरि बोगरि मृति

कुसुमादिति को चरितार्थ किया है। कवि-कल्पित उनका वि-
 स्वाभाविक है। राम धीर हैं, पराक्रमी हैं, प्रजापालक हैं—लेकिन
 सबसे पहले आदर्श पुरुष हैं। धीरोदात्त ७ नायक के सम्पू-
 लक्षणों ने उनमें आश्रय पाया है। नेता x के सब गुण रामच-
 जी में विश्रमान् हैं और इन्हीं नमूनों को सामने रखकर भवभू-
 ति ने राम का चरित्र-चित्रण किया है। तथापि भवभूति वासन्तो-
 मुख से मीठा-निर्वासन के लिए राम पर कटु तथा नम्र संकेतों
 विकट शौद्धार कराता है। यह सब कुञ्ज करने हुए भी विच-
 भवभूति अपना कवि-कर्तव्य पालन करने में कहीं तक सकल प्रय-
 हुए हैं, इसका निर्णय केवल विश्व पाठकों पर ही छोड़ा जाना है।

१०. प्रकृति-वर्णन—जिन किन्हीं वस्तुओं का वर्णन कर
 हो उनका साक्षान् अनुभव कवि के लिए आवश्यक है। पद-
 तो बड़े बड़े कवियों में भी प्रायः यह सामर्थ्य नहीं पाई जाती।
 उनके वर्णन यथार्थ वन मरुं अर्थात् उन पदार्थों के साक्षान्
 में जो कल्पना मन में आती है वह केवल वर्णन पढ़ने से मन
 कदापि आविर्भूत नहीं होती। जब इन वर्णनों की ही ऐसी द

७ महा मन्वोति गम्भीरः समावान् विकल्पन ।

स्थितो त्रिगुणाहंकारी धीरोदात्तो रङ्गवृत्तः ॥

x नेता विनीतो जगदुरसपायी दक्षप्रियम्बदः ।

रत्नशोकः शुचिर्वाग्मी रुद्रवराः स्थितो युवा ॥

विष्णु तन्साह भूमि प्रजा कलामान समन्विता ।

शूरो रदरव गेजस्वी शास्त्रवचुरवधार्मिकः ॥

हैं तो इनकी प्रतिकृति में यथार्थता और रस कहीं तक रह सकते हैं इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं (इस प्रकार की चूटि से भवभूति के नाटक अधिकांश में दूषित नहीं हैं । केवल इनका ही नृष्टि-विभव-वर्णन आधुनिक अंगरेज कवियों की सजावट के टंग पर है) । इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि संस्कृत के और कवियों ने नृष्टि-पदार्थों का वर्णन लिखा ही नहीं, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन कवियों का टंग निराला है, उनके वर्णन में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं निश्चिन बातें कभी छूट नहीं सकतीं । जिन्हें पढ़ कर यह शंका स्वभावतः उत्पन्न होती है कि उनमें से बहुतेरों ने अपने वर्णित प्रकृति-दृश्यों का स्वयं अनुभव कदापि नहीं किया, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ कर वैसा लिख दिया है । किन्तु भवभूति ऐसे कवियों में न थे । उपमा और प्रकृति वर्णन यद्यपि कालिदास का सबसे अनूठा है किन्तु वर्णन में उस वस्तु का रूप आँख के सामने खड़ा कर देना भवभूति ही जानते थे । उत्तर-राम-चरित में आश्रम, तपोवन, पर्वत, गुल्मलता आदि का ऐसा अद्भुत वर्णन किया गया है जैसे यह सब पढ़ने वाले के सामने ही हैं । मालती-माधव में स्मशान का वर्णन पढ़ने से रोमाञ्च खड़े ही जाते हैं । उन्होंने जो स्थान स्थान पर प्रकृति के उत्तमोत्तम वर्णन लिखे हैं उन्हें कवि-कपोल-कल्पित व अयथार्थ कहना युक्तियुक्त नहीं है । इससे यही प्रकट होता है कि प्रकृति देवी के भोंति के मनाहर दृश्यों को अत्रलोकन करने का भवभूति को प्रकृतिजात परमोन्माद था । दण्डकाण्य, जनस्थान, पञ्चवटी, गोदावरी नदी के स्वच्छ स्वाभाविक वर्णन

प्रधानी कृत्रिम, मनमाय, प्रौढ़, मनबलुहल तथा लम्बे लम्बे प्रमाण प्रभावशाली मानसों से सुसिद्ध है। भवभूति के नाट्य-पत्र लम्बे और रुढ़ांगर भाव हैं और उनके नाटक उन मनस के मानसिक भाव, रीति-रिवाज, आचार-विचार और पारम्परिक व्यवहार के जैसे के जैसे प्रतिबिम्ब हैं। उनके द्वारा ही तत्कालीन हिन्दू मानसिक अभिवृद्धि, भाव और सम्बन्ध का लम्बा पता चलता है। कालिदास के परकाय होने से भवभूति को उनके भावों तथा विचारों का अनिवार्य अनुकरण करना पड़ा है, किन्तु वह अनुकरण भी वही वही बहुत सही हुआ है। जिस बात को कालिदास व्यंग्य में प्रकट करते हैं वही भवभूति द्वारा वाक्यार्थ में कथन की जाती है। कालिदास पर मूढता शास्त्रीय नियमों का अङ्गुल नहीं है किन्तु भवभूति पूर्णतया यथा-वन् शास्त्रीय नियमों का पालन करते हैं। उनके अतिथियों का स्वागत मधुपर्क दिना होता ही नहीं—कालिदास के नाटकों में विदूषक महाराज मिलेंगे जिनकी उपहासजनक बातों से गान्धीयों को भागना पड़ता है, किन्तु भवभूति के नाटकों में विदूषक का नाम भी नहीं + प्रत्युत दुर्गुरु को भी कर्मव्यवहार हीना पड़ता है। वास्तविक अटनकर्म के गान्धीयों की रवा के निमित्त कदाचित् भवभूति को रोना पड़ा है। कालिदास के कोई भी नाटक नशिका, दाम्पत्य विज्ञान के उच्चत उद्देश्य आदर्श पति राज

+ कदाचित् भवभूति के मन्त्र में ऐसे लोगों के पालनविधि के कारण उपहासजनक बातों को दूरे रोकना माना सम्भव रहा करते होंगे।

जिन दोनों ही अज्ञान भाव से अपने पुत्रों से मिल कर मुग्य हो जाते हैं और दोनों ही नाटकों के नायक महर्षियों के आश्रम में उनकी कृपा से अपनी अपनी स्त्री पा लेते हैं। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि उधर तो महाभारत के एक रूपक को लेकर कालिदास ने शकुन्तला नाटक की रचना कर संसार को मोहित कर दिया, उधर कालिदास के परचान् कालीन भवभूति ने रामायण से उसी प्रकार का एक रूपक ले उत्तर-राम-चरित को रच उक्त कवि को शकुन्तला का जोड़ उपस्थित कर दिया और इन दोनों प्रतिष्ठि प्राप्त की। अस्तु यदि भवभूति का लक्ष्य उत्तर-राम-चरित बनाने मनस शकुन्तला रहा हो तो असंभव नहीं है।

नाटक के आरम्भ में एक ब्राह्मण आकर सभा को आशीर्वाद देना है, इस आशीर्वाद को नान्दी कहते हैं। फिर नाटक खेलने वालों का मुखिया जो सूत्रधार कहलाता है सभा के सामने कुछ कह कर कहता है कि आज अनुक्त नाटक का खेल किया जायगा इन बातचीत की प्रस्तावना कहते हैं। नाटक के भागों को अंक कहते हैं और जो कोई अधिक प्रसंग किन्हीं अंक के आदि में आता है वह विष्कम्भक अथवा गर्भाङ्ग कहलाता है। नाटक के पढ़ने वालों की सुगमता के लिए कुछ बातें कोटकों में लिखी जाती हैं; जैसे—

(नेपथ्य में)—इसका मतलब यह है कि यह बात कहीं परदे के पीछे से सुनाई पड़ती है जिसका कहने वाला रंगभूमि पर उपस्थित नहीं है, इस चिह्न का प्रयोग उस समय होता है जब नाटक-कार किसी बात को बिना रंगभूमि पर खेले दर्शकों को ज्ञात करा देना चाहता है।

मंकेत

(आग हो आप) अथवा (अलग) का अर्थ है कि जाना इस प्रकार बोलना है मानो दर्शक तो सुन रहे हैं हमारे नाटक खेलने वाले नहीं सुन रहे हैं ।

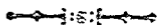
जहाँ लिखा है कि अमुक का प्रवेश, अथवा अमुक आता जाता है इत्यादि हममें जानना चाहिए कि वह पात्र रंगभूमि पर आया अथवा वहाँ से नेपथ्य अर्थात् परदे के पीछे गया गया ।

पौद्गल, आगत }
०-१-१३

—मत्स्यनारायण

॥ धी हरि ॥

उत्तर-राम-चरित नाटक



[नान्दी]

वन्दौ धीमदालनाकि कविभग दामावन ।
रामचरित-नित-नय-रमाल-पिक वृत्त-जग-पावन ॥
पुनि दौचन मनहरनि रमिक-पर-हृदय-दिलामिन ।
हरय-धरनि-जप करनि दिदिध विज्ञान दिकामिन ॥
धी शब्द-मूर्ति-धर-मम की जो मंडल माया लमै ।
धन धन-धानी पद्दर्श नित मानुष अगुन धर्म ॥ १ ॥

[मूत्रधार का प्रवेश]

मूत्रः—इस, अधिक विन्तार का काम नहीं, आज भगवान
कानप्रियनाथ की यात्रा के शुभ उन्मय पर सर्व मज्जन
महोदयों की विदित हो कि करयपकुल-उजागर, धर्मिन-
विद्या-सागर, जननि जानुकरों के पवित्र गर्भोत्पन्न, धी-
कण्ठ-पद्मन्वन जिनका नाम भी भवमूर्ति प्रसिद्ध है—

एवन के धन जनु मरत्तनी,

करति काव मनो नित भासिनी ।

मुदिन जेजान नामु कवीन्द्र के,

विमल उत्तर-राम-चरित की ॥ २ ॥

[वृत्त धर कर] अरदा, मो, अथ मैं कार्यवशा अयोध
 वामी और महागात्र श्री रामचन्द्र के समय का ब
 जाता हूँ । [जाती घोर देख कर] अरे, क्या आत्र
 पोलम्य कुल भूमकेतु श्री राघवेन्द्र के राधाभिषेक
 समय है ? इन दिनों तो निरन्तर आनन्द-संगल
 गान-बजाने की भूम-वाम मयी रहनी चाहिए; कि
 हिम कारण से विहगावली गाने हुए प्रकलित वा
 और भाट आगा म औरहे शून्य दिव्यभाई पड़ रहे।
 नर—[आकर] भाई बात यह है कि महागात्र ने महा
 पुरुष से महाय करत बात बन्दगी, राजसौ तथा अ
 रदा के प्रद्वारि और राजसि आगा की भी राधाभि
 के सम्मान के लिये आग वे—वहीं से विदा कर दिया
 अरदा के मन्कागाय इन दिनों तक सम्भव रहा था ।

मन्त्र—अरदा, हीह ।

नर—घोर दया—

श्री कविन्द्र या तुने मुनिन्दन सब महागरी ।

कविन्दारिन्दन मानु प्रथम मुदिन मुन मारी ।

मुनिन्दन के मत लई मुनिन्दन मतन मुनिन्दन

मुनिन्दन हनु मुनिन्दन मत इन्दन मतन मत ॥२॥

मन्त्र—अरदा, मैं विद्वेगी हूँ, इस जेजान पुरना हूँ कि व मुदिन
 वीन हूँ ।

नट—शान्ता जो सुन्दर सुता, दशमथ भी गुन-माल ।

इसी लोमपादहि मद्य, गोद धरन भुषपाल ॥ ४ ॥

उसका विवाह विभास्टक के पुत्र शृङ्गोष्पि के साथ हुआ, जो आजकल दसह वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ कर रहे हैं, इसी कारण पूर्ण गर्भवती जानकी जी को छोड़ नय धड़े वृद्धे वहाँ गये हैं ।

सूत्र०—इसमें हमको क्या ? हमतो चारण हैं, चलो राजद्वार पर चले और निज वंशपरम्परानुसार राजा की विरुद्धा-वलि बरसाने ।

नट—तो वहाँ के लिए कोई बढ़िया स्तुति सोच लीजिये जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो ।

सूत्र०—मुनो भाई !

धूस चापरी में बसहुँ, करनी चाहिये नाहि ।

सब प्रकार निरदोष बहु, को पदार्थ जग माहि ॥

घुटिल मनुज सों रहि सप्त, भला कौन निस्संक ।

मद्यनिता कवितान में, जो नित लखत कलंक ॥

नट—अजी, ऐसों को तो अति घुटिल कहना चाहिए क्योंकि—

मर्ता सिपहु कों दोष दै, जन जय करत अनीति ।

अपर तिपन भी जगन में, को करिहँ परतीति ॥

केवल निन्दा मूल तिन, राक्षस घर कौ यास ।

अनल-रीषधु में सनक, नहि लोगनि धिमपास ॥ ६ ॥

अंक १

(ग्यान—गजबदन)

[एक और और शब्द का ही दियकरा करते हैं]

गज—देवी श्रीराम धर्म, इतना सोच रहे करती हो ! आपने

तुम विना कर ही उन लोगों के अनुकूलता

विना ही नहीं कर सकते, किन्तु यह बने—

विश्वको ही विना करि ही करि ही करी ।

सकल विना सुखीकर ही करि विना ।

विना कराने कर रहे देवदेव कराने ।

य विना ही करि कराने ही न करे ॥ १ ॥

गज—कराने, मैं इसे कराने कर करती हूँ; किन्तु कराने

लोगों के विना कर कर कर कर ही है ।

गज—करने, कराने का कर कर ही है । कर विना कराने

कराने कराने कराने कराने ही करत है, इसी कारण

कराने कराने ही कराने कर कर कराने को कराने

कर ही कराने कर मे कर कर कराने कराने हैं ।

[कराने का कर]

गज—कर कराने, [कर कराने कराने कराने कर कर]

कर कराने]

जिन कुल सविता संस-प्रवरतरु हन आचारी ।

तिन राजनि की यधू नन्दिनी तुम सुकुमारी ॥६॥

इस कारण और क्या आशिष दें, वस भगवान तुम्हें
वीर-जननी बनावें, यही हमारी आन्तरिक कामना है ।

राम—इसके लिए हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं, क्योंकि—

निरसि अर्थ कहें निज धन कों,

सकल लौकिक साधु बनाइकें ।

पिमल मानस आदि श्रुपानु के—

यचन कों अनुभावत अर्थ हैं ॥१०॥

अ०—और भगवती अरुन्धती, देवी शान्ता, महारानी माताओं
ने वारन्वार यह कहला भेजा है कि आजकल गर्भिणी
माता का मन जिस किसी वस्तु पर चले वह अवश्य ही
उपस्थित की जाय, उममे कदापि देर न करना ।

राम—जो कहती हैं सो मय किया जाता है ।

अ०—तुम्हारे नन्दोई और माताओं ने यह कहला भेजा है कि
घेटी, तू पूरे दिनों से है इसी कारण तुम्हें हम अपने साथ
नहीं लाये, वरस रामचन्द्र को भी तेरा जी बहलाने के
लिये वहाँ छोड़ दिया है, इसलिए हे आयुष्मती ! लाल से
जब तेरी गोद-भरी पूरी होगी तभी हम तुम्ह से मिलेंगे ।

राम—[हर्ष और लाज से मुसकरकर] ऐमा ही हो, कष्टिए भगवान
वशिष्ठजी की कुह, मेरे लिए भी आशा है ।

अ०—उसे भी मुनिये—

प्रिय न बाहि रघु-जनक को, कृप सन्मन्थ पवित्र ।

करत-धरता जई सुभग, आहुहि निरवानिध ॥१०३॥

सीता—आर देखिये, ये चारों भाई सगुन साथ से सुरडन कराकर विवाह का कंकन दौधे उपस्थित हैं; अहा ! मेना जान पड़ता है मानो इन लोग जनकपुर में बैठे हैं और यह वही समय दब रहा है ।

राम—सुदुर्गो ! संतत संनय यह, होत बहो परतंत ।

सौमन-देव-उदत उद, तेरो पति पुर्नत ॥

कंकन-भूषित जुनु नहा, उरद्वर को धवनार ।

अहन करत प्रकृतित किनो, मोहों करहिंदर ॥१०४॥

लः—देखिये आप हैं, ये श्री माण्डवी हैं और ये बभ्रू कुनकीवि हैं ।

सीता—और यह दूनरी कौन हैं ?

लः—[लज्जा में मुनकरा कर आप हां आप] महारानी सीता अब उमिला को पूछ रही हैं, तो किसी बहाने यह बात उड़ानी चाहिए । [अंग] सीतली, देखने योग्य इधर हैं, आइय, भगवान परशुराम जी के दर्शन कीजिये ।

सीता—[अन्न में पड़कर] इनके देखने से तो भय लगता है ।

राम—ऋषि महाराज को नमस्कार है ।

लः—महारानी देखी देखी, यह महाराज ने ऋषि के धर्म

राम—[अंग में इज्जते हुए] अजी, अभी तो बहुत देखने को पड़ा है, और हो कहीं दिखलाओ ।

सीता—[स्नेह और आदर से देखकर] आर्यपुत्र, इस विनय बड़ाई

सीता—ये विश्व की चंदना योग्य पुण्यसलिला भागीरथी बहरती हैं ?
राम [चित्र देख कर] माता भागीरथी, आप रघुकुल का कुल-
देवी हो, मैं प्रणाम करता हूँ—

खोजत सगरसुत यज्ञ-हय,
महि भेदि पातालहि गये ।

मुनि कपिल-कोप कराल सों,
जरि धार सब दिन में भये ।

शक्ति कठिन तप तपितय भगीरथ,
सलिल शबहर लाइकें ।

उद्धार कियो पुरजान को,
भगवति दयानुप पाइकें ॥२२॥

सो हे जननी, आप अरुन्धती के समान बधू, सीता पर
सदा स्नेहमयी दृष्टि रखना ।

लः—यह वही श्यामघाट है जो भरद्वाज के बतलाये हुए चित्र-
कूट के मार्ग में कालिन्दी के तट पर मिला था ।

सीता—आर्यपुत्र, क्या इस प्रदेश का भी आपको स्मरण है ?

राम—भला, यह कैसे विस्मरण हो सकता है—

जब नारग के खन व्यापन सों, सिधिलाइ के झालस भोइ गई ।

मिसिलीं मुरलाई मृनालिनिसीं, पल-दीन पसीनु भोइ गई ।

कपु मेरे तयै परिरम्भन सों सुदि-धंग-हराहरि खोइ गई ।

सुख नानि प्रिया ! यहाँ काही घरी, हियरा लागि मेरे तू भोइ गई ॥

लः—अब यहाँ से विन्ध्याचल के वन का आरम्भ हुआ है, वह
देखिये, विराध के संग आपका संग्राम हो रहा है ।



राम—संयति-मन-संयत विदुः, महामतु बलवान् ।

जगत्तरु त्वन्विके जने, मे यत् भो हनुमान् ॥३२॥

मोः—लाल! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके शृङ्खलित
कन्दर्पो पर बैठे मयूर गान कर रहे हैं; और जहाँ के वृक्ष
नीचे, मूर्च्छित दशा मे पीकी कान्ति वाले शार्पशूद्र,
जिनका केवल प्रभाव-मौनद्वय शेष रह गया है और
जिन्हें रोते हुए तुम मँभाल रहे हो, दरादि गये हैं ।

सः—आहुर शुभ्र मुनिव्रत विदि मो नाजयत्र विदि वनम् ।

अनु निमित्त-कश्चित् सदा वनप्रदान हृदय कश्चित् ॥

राम—दिलो दिलो लाल! बगो जगि, सुख हो बल करो ।

सगल मर्तु निरदिन्दु-मदुला मलकि हृदि लालो ॥

सः—यों मे जगो मयं कर्ष के और बगि मयुगो के कर्मोद

अहुर वार्य प्रमदूर्धक दिगये गये हैं; किन्तु जग

पदना है कि महारानी मर गई है, इन कारण निवेदन

है कि आज कुछ दिग्गम कर लीजिये ।

मोः—जगो मय ! इस विद्वद्वान् मे तुम मर्च्छितो की राम वनम्

हुं है, बरिये को करो ।

राम—आहुर करो ।

मोः—यों मे जगो है कि यह वन विदि वन मयुग मयुग

जगो मे विद्वान् करो, और महारानी मर्च्छितो के मयुग

निर्मोद मर्च्छित मयुगो मोः मे मयुगो मयुगो मयुगो

मयुगो ।

राम—मोः मयुगो !

सुख है अथवा दुःख सो, निहचै बैसति नाहि ।
 मद, प्रशोध निद्रा किधौं, विष घापो तन नाहि ॥
 डारि बबहुँ भ्रम भँवर यह, चित्तहि देत भ्रमाय ।
 अरु बबहुँ करि ताहि धिर, देत प्रमोद जगाय ॥
 महन बरन निज निज विषय, इन्द्रिय-भान अमनर्थ ।
 अद्भुत गूढ रहस्य जे, मनुकि परत नहि अर्थ ॥२५॥ ✓

माँ:—(हँसकर) आप का सर्वदा अनन्य प्रकारस प्रेम मुक्त
 पर रहा है इन से बड़कर और क्या कहना चाहिए ।

राम—माँचि मनेह के जीवन मों, बरै सुखत हीय प्रमून सुखाती ।
 इन्द्रिय कों नित कृति-सुधा, अनुधा-तल पै परमावन भारी ।
 एतक दैन दिनीत नर्थ, दुखनोचन अद्भुत लोचन डारी ॥
 धीनित कों सुखदायक ज्यो, जग सों मन हेत समावन प्यारी ॥२६॥ ✓

माँ:—हे प्रियन्वदा ! अथ मैं माँडूँगी ।

(सोने के लिए इधर-उधर भ्रमण रूँदती है)

राम—प्रजाँ तुम क्या रूँदती हो—

पूज्यो व्याहपरी सौं मद दन गेह में नेह निबहन डारी ।
 बालपने और बौवन में पुनि तोहि समोद सुखावन डारी ॥
 जाहि सरयो मरनेहु नहीं अरने दम में बबहुँ पर नारी ।
 राम की ताही सुख को मिताहरी लेउ लगावहु प्रमदियारी ॥२७॥ ✓

माँ:—(नौद का नाश करती हुई) ऐसे ही हैं, आर्य पुत्र ! ठीक
 ऐसे ही हैं ।

राम०—क्या प्रियव्यदा गोद में सो गई । (स्नेह से देखकर)

एह की यदि एहलक्ष्मी, पूरन सुखमा साज ।
 धमून सरारै सुभन यदि, इन नयनन के काज प
 तन परमत पेयी लगे जनु चन्दन रम्यधार ।
 यहि भुज मीतप मुदुल गय, मानहु मुनियन द्वार ॥
 कष्ट न जाको लगन कम, जहाँ न सुख-संज्ञोग ।

किन्तु दुमह दुल को भरयो, केवल जामु विदोग ॥१८१॥
 (प्रतिहारी का प्रवेश)

प्र०—उपस्थित है महाराज !

रा०—अरे कौन ?

प्र०—दुर्मुख आपका गुप्तचर ।

रा०—(आप ही आप) दुर्मुख तो रनधाम का सेवक है, उसे तो
 हमने नगर के लोगों का भेद लेने को भेजा था (प्रगट)
 अच्छा आने दो ।

(दुर्मुख का प्रवेश)

दु०—(आप ही आप) हाय महाराजों सीता के विषय में ऐसे
 जनाबवाद को, जिसे सपने में भी विचारने से पाप लगना
 है भगवान रामचन्द्र से कैसे करूँगा ! बिना कहे बनती
 भी नहीं, क्या करूँ मुझ अभागों का तो काम ही यह है ।

सीता—[रत्नावस्था में विलाप-स्ता करते हुई] हाय प्यारे आर्यपुत्र
 कहीं हो ?

राम—ओहो ! विघ्न देखने से जो इत्कण्ठा हुई उसे बढ़ाने वाली मेरी ही विरह-भावना सपने में भी प्यारी को चैन नहीं लेने देती ।

[स्नेह में सीता के शरीर पर हाथ फेरते हुए]

मुख-दुख में नित एक, हृदय का प्रिय विराम थल ।

सब विधि में अनुकूल, विमल लक्षण मय अविचल ॥

जामु सरसता सर्व न हरि, बसूँ जाटाई ।

ज्यों ज्यों वादत सघन, सघन, सुन्दर सुगर्भाई ॥

जो हृदयर पै संकोच मजि, परतत हृद अनुराग सत ।

जग दुरलभ मगजन प्रेम धम, बहभानी मोज लखत ॥३६॥

दुः--[आगे बढ़ कर] महाराज की जय हो !

राम—कहाँ क्या नमाचार लाये ।

दुः--मय नगरवासी आपसी बह्वाई करते हैं और कहते हैं कि हम लोग इनके सुगह सुराज्य में पड़े महाराज दशरथ को भी भूल गये ।

राम—यह तो बह्वाई हुई, शोष भी तो कुछ बटो जिनसे हमके दूर करने का उपाय किया जाय ।

दुः--[हँसू भरते] सुनिये महाराज [बाल में बरफ है] ।

राम—हाय ! यह कैसा खमल घचन बजापात है "

[स्तब्ध होते हैं]

दुः--धीरज धरो, महाराज ! धीरज धरो !

तुम्हारे भी यह जान हो, फिर सब सिद्धि पावन।

है तुम्हारे धर्म का वादा वाचन बन बनाना।

है तुम्हारे भी लोक, निजते सब सब।

विश्व सब तुम भोगतु तुम, अनु निज सब सब ॥३॥

[द्वितीय में] तुम्हारे तुम सब सब में जाकर करो कि तुम्हारे
 मैं महाराज राम की यह छाया है [कर्म में करने हैं]।

दुः—कर्म तुम्हारे के कर्म में यह जानने क्या ठान लिया है,

कर्म में जो सब पर सब सब लगेगा; महाराज, कर्म-संगीत

में भी विशुद्ध प्रकृतिक हो तुम्हारे है और फिर छाया बन

में इनके कर्म में सब सब सब के संगीत की सिद्धि है,

यह भी सिद्धि बनाना होगा।

राम—जैसे तुम, क्या प्रकृतिक के लोक तुम्हारे सिद्धि सब हो

करने हैं—

विश्व प्रकृतिक सब सब, सब सब सब सब।

विश्व सब सब सब में, सब सब सब सब।

सब सब सब सब सब सब सब सब सब।

सब सब सब सब सब सब सब सब सब।

सब सब सब सब।

दुः—जैसे महाराज।

[संगीत]

राम—जैसे मैं विशुद्ध सब सब सब सब सब सब सब सब।

विश्व सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब।

सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब।

अब दैके दगा अपराध बिना तिहि सँपि को हाथ ये कैमी भई ।
जमराज के आनन देन चहों अनु मैना कमाई को सौंवि दई ॥४१७॥
तो फिर हाथ, जिसके छूने से भी पाप लगता है, ऐसा मैं
अधर्मी, देवी को छूकर भी क्यों दूषित करूँ ।

(सीता का सिर धीरे धीरे उठा कर अपना हाथ बाँध के)

भारी मिथा मोहि होंकिदे मैं अति अधम बंडाल हूँ ।
देखो न होगी धम कहुँ अरु ना सुन्यो होगी कहुँ ॥
कृषि ऊपरी क्यौहार मम धीमपद के घोन्वे परी ।
दुरभाग बस विष विटप सो अचला कृपा लिपटी धरी ॥४१८॥

(उठकर) हा ! आज पृथ्वी लौट गई, राम के जीवन का
प्रयोजन नष्ट हो गया, अब जगन् मृता उजाड़ जंगल-मा
लगने लगा, यह ममार अमार है, शरीर भी अपने
लिप घाँस हो गया है, कोई आश्रय भी तो नहीं रहा,
कि कर्तव्यविमूढ़ हूँ, क्या करूँ, कहीं जाऊँ अथवा यों
कहना चाहिए—

जगत में नित भोगन को विधा,
बस मिन्यो यह जीवन राम को ।
सरम-भेदक माननु सौं जड्यो,
मकन ना कदि बेबन बेनता ॥४१९॥

हा जननी अग्न्धनी ! हा भगवान यशिष्ठ ! हा विरशामित्र !
हा पवित्र पावक ! हा देवी वसुन्धरा ! हा जनक !

हा पिता ! हा माता ! हा परमेश्वरों लंकाधिपति विभी-
षण ! हा प्यारे सुहृदय सुग्रीव ! मीन्य हनुमान ! हा
मग्नी विजटा ! आज राम पत्नी ने तुम मद्य को धोखा
दिया और तुम्हारा मद्य का निगाहर किया । हाय अद्य
तुम्हें इनके नाम लेने का भी अधिकार क्यों है; बतौकि—

महाविष कल्प । अविदित है धनिधन ॥
धर्म हैं हुमान्दुर्मन । एत सुदुर्मन-धर्मन ॥
अद्य वेदु को इत्य मन । मद्य विधि दुर्मन कल्पन ॥
अद्य पत्नि विन्धो चंड । हा ! हा ! क्यों महर्षि ॥ १५ ॥ ॥

विन्धो मैं ने—

पत्नी विधि के दिया मी लगी, विन्धो को मद्य ने अद्य मी ।
सुदुर्मनिये मन-मद्य को, सुग्रीव मी मग्नी सुग्रीव दुर्लभ ॥
मद्य ने अद्य-मद्य मग्नी-मद्य को के मद्य मी अद्य मी ।
विन्धो को अद्य मद्य मग्नी-मद्य को अद्य मी अद्य मी ॥ १६ ॥ ॥

[मीन्य के अद्य अद्य मद्य ने मद्य] देवी ' देवी ॥

अन्धिये अद्य मद्य के अद्य मी मद्य के अद्य अद्य मी का
मद्य है—[मीन्य है]

[मीन्य है]

[अद्य है मद्य के अद्य है ॥]

मद्य—देवी को अद्य अद्य है ॥

[मीन्य है]

तर कियो कितने अनि शक्य,

प्रहरमा वसुधा-नट-रम्य मैं ।

सवण-शामिल ता शक्ति-पुंज की,

सरन मैं रघुनन्दन शक्तिये ! ॥२०॥

राम—अरे क्या अमों तक राज्यों का ग्राम बना हो है, अरुद्धा तो अभी इस कुम्भीनसी के पुत्र को नास करने के लिये स्वनामधन्य शत्रुघ्न को भेजूँ [कुछ चलकर और फिर वर के] हा देयो, तुमका कैमे अकेली छोड़ूँ । भगवनी भूतपात्री तुम अपने प्यारी जानकी को देखनी रहना, तुम्हें मौपता है ।

जनक के रघु के वर बन की,

सनत जो सन मंगलशायिनी ।

सहस्रै लतिका सिद्ध कीर्ति की,

तुव मुना यह सोई वसुंधरे ॥२१॥

(जाते हैं)

सीता—(सपने में) हाय प्यारे प्राणनाथ आप कहाँ हा ? (अट उठकर) हाय हाय घुरे स्वप्न से छड़ी जाकर दुःख में मैं आर्यपुत्र को पुकार रही हूँ, हाय धिक्कार ' धिक्कार ' जो मुझ अकेली को सोते छोड़ वह चले गये अरुद्धा देखा जायगा फिर मिलने पर जो मैं अपने बस रही तो उनपर बिना कोप किये न रहूँगी । अरे भाई कोई बाहर है ?

[दुसरे का प्रवेश]

दु०—देवी, कुमार लक्ष्मण ने कहाला भेजा है कि रथ सज गया,
श्रोमती आपर उम पर विराजमान हो जायें ।

सौ०—अच्छा मैं चलती हूँ, पर चलने में गर्भभार काँपेगा
इसलिए रथ को धीरे धीरे चलाना ।

दु०—इधर में आइये, महारानी इधर में चलिये ।

सौ०—मेरा हाथ जोड़ परित्याग;

अपिमुनिवन को, जे पर कारज करत दुःख बें धाम ।

धीं हनुवंतमान्य-कुल-देविदु, जे हनुमत अटलाम ॥

आपुत्र-पदपदमति, जे मन मुग्ध-भयंश ललाम ।

मर मुकजत हित, जित आसीन सो पावन मुग्ध कनिराम ॥२२॥

[मर जाते हैं] ~



अंक २

अथ विष्कम्मक

[नेपथ्य में]

[तरन्विनी जी आपका स्वागत है ।]

पथिक के वेरा में तपस्विनी का प्रवेश)

त०—अहा, यह तो वनदेवी है जो फल फूल और पहाड़ों का अर्घ्य बनाकर मेरे लिये लाई है ।

[वनदेवी का प्रवेश]

प०—[अर्घ्य देकर]

भोगी यथारथि या वन कौं, तव दर्श मिले धनि भाग हमारो ।

पुण्य धनेनु सौं पावन है, जग पावन समन-संग-सहारो ॥ +

छौंहरि में विरमाय पियो जव थारु, मुनीनु के जोग पियारो

कंद परहार पाह्ये जू काठ और की ना, सब मूर्ति तिहारो ।

त०—अहा क्या कहना है —

ॐनिज रवि अनुमारा भोगहु मारा, वन यह धनि मम भागे

मजन सतसंगा धरम प्रसंगा, मिलत मुहलि ओ जागे ।

तरु छौंहरि मुहावन मुहुजल पावन, मुनिजन भोजन जोई

पव वा कन्दा सब खण्डन्दा, वरतहु निज तिन सोई ।

बुधा प्रियवृत्ति, विने मधुरा, यतियानियों चार दिचार द्दार्थ ।
 पंचानि अभिन्दित मिले मर्द, मति मंगल मोद मर्द मन भाव ।
 रस एव अगार विचार लने, दुल दिद दिना, शयताप नगार्थ ।
 इमि मज्जत-पुण्य-धरिण मर्दो चहुँ चोर विजे दग्गा दग्गार्थ ॥२॥
 (दोनों बैरनी हैं)

पः—हृषाकर बनलादेवे तो आपका शुभनाम क्या है ?
 मः—जुमे. लोम आप्रेयी कहते हैं ।
 पः—आप्रेयी आप्रेयी ! अफझा तो फिर आपका आना यहाँ से
 हुआ और हम दृष्टकारण्य में विचरने से धीमती का
 क्या प्रयोजन है ?

आः—या इत में निरयम सुभत, अयाकादि मुनि पुज ।
 मुनर मुर तो निर बरे, मयम-माम बी पुज ।
 मयम-माम बी पुज मुनि, महज मर मोतम ।
 मय दपरेम अयोग बाक अरे, जग मधि मोदक ।
 निर तो मे सेलपन एतत बी प्रक धरि मर मे ।
 दालमीदि तिल तो मिथार दिवारि या इत मे । १ ।

पः—आपने यह और कृपि मुनि का बंदे का पारायण करने
 से सिद्धे का इच्छित मज्जतों का इच्छितों को निरयम.
 १ जग जग मज्जतों का इच्छित मज्जत कृपि मुनि मुनि इत मे ।
 इत इत मज्जतों का इच्छित मज्जत मज्जत मज्जत ।
 निर इत मज्जतों इत इच्छित मज्जत मज्जत मज्जत ।
 मज्जत मज्जत मज्जत इत मज्जत मज्जत

वितरन गुरु इक सन करत, दुध मूलक कौं ज्ञान ।
 करत न, हरत न कहुक तिन, दोध शक्ति परिमान ॥
 किन्तु सनप परिमान के, अन्तः सिदुल खन्वात ।
 रहत नूद के नूद इक, अन्ध चतुर बनिजात ॥
 जिनि दिनेन सन भाव सौं, नम में करत प्रकाम ।
 पूरन प्रति धल पर परत, तानु किरन आभास ॥
 ननि-मंडुल सनरय सदा, दिव्य ग्रहन के नौहि ।
 पै नाटी के टेल कहुँ, सुतिनय दीसन नाहि ॥४॥

वः—बस यही विस्त था ?

आः—और भी है ।

वः—वह और क्या है ?

आः—एकदिन मध्याह्नकाल में वह महर्षि महाराज तनमा
 नदी के तीर पर गये, वहाँ देखा कि मानन्द विचरते हुए
 झोंच पत्ती के जोड़े में से एक को व्याध ने नाग डाला है,
 वही समय अकस्मान् ऋषि के मुद्र से नीचे लिखे आशय
 की स्पष्ट, दोष रहित, पूर्वापर मन्द्यन्ध युक्त, मधुर अनुष्टुप
 छन्द के रूप में वाग्देवी का प्रकाश हुआ ।

“मेनमरी अति चाह सौं, नदनाती मानन्द ।

झोंचनि की लोही पिरन, पिहरत जो म्वच्छन्द ॥

हनि तिनमें सौं एक कौं, किपो परन करतध ।

डग डग सौं तोहि ना नितहि, कहुँ बहाई व्याध ॥”

वः—अरे ! यह तो वेद से भिन्न नये छन्द-का-सा आविष्कार है !!

बा : ...

बा : ...

...
...
...
...

...
...
...

...
...

...
...

...

...
...
...
...
...

...

...
...
...

थाः—हे कल्याणमयी अब तो मैं जाना चाहती हूँ ।

बाः—अच्छा अब दिन चढ़ आया है, देखिये—

जहाँ घोंसला-निकुंज भाइके कपोत-पुंज,
 सुदकपदैया धके कूँजन मुनावहीं ।
 झोंहरि में झाल जिनकी कुँदि कीरनि कों,
 चौधनु निहारि सात सग दरसावहीं ।
 जवहीं मुजावी गज-गडपल पीडिति सों,
 टपकि घमीले जित कुमुम मुहावहीं ।
 ऐसे चाह कुनद्रुम कूल बरमाइ मानों,
 गोहावरी पूति सामु गुन-गन गावहीं ॥१६॥
 (इति विष्कम्भक)

[स्थान दण्डक वन]

(पुण्ड्र विमान में बैठे हुए लडग हाथ में लिए श्रीराम का प्रवेश)

रे इन्त मूषे घाज । दित सिमुहि ज्वावन काज ।
 अब यह हजान मग्हार । कह गूद्र मुनि पै वार ॥
 अति दुमह गर्भेहि धारि । जित निच जनक-कुमारि ।
 नष्ट होत जिहि क्या नाहि । तिहि विजन वन के माहि ॥
 जो ताज न माहि सकुवाज । ता राम को नू गान ।
 तो मधि कटोर नुर्मम । किनयो दवा को चंय ॥१७॥

(प्रहार करके) अब तो निर्दय-हृदय राम के सदृश वन
 अथा और माझग का पुत्र भी जी उठा !

(शत्रुक का दिव्य पुरा के रूप में प्रवेश)

दिः पु०—जय हो, महाराज की जय हो—

जय-देवदूतों रखत जो जिन, दंड निजि नोकों दयाँ ।

जय जो उरयो तालन भिन्नु यह, विजुल मन यैभव धराँ ॥

शत्रुक तुव पद नवन, मींगत भक्ति नव-भय-हरिनी ।

नव-भंग में यदि नृपुहु मिलि जाय, लोड लारिनी ॥१०॥

गानः—शेनों धारें हमारे मन को हुई, अन्दा भाई ! तुमने क्या
नय किया है: इसलिये—

हैं जैसे पून धारेंद तलान,

जो पान पुरा-मनसि धन ।

जय भुष प्रकन जहँ दिव्य ब्यात,

दौरव लोक हो तंहे प्रत ॥१०॥

गोः—जय हो के चरणाविन्द के प्रताप से यह महिमा प्राप्त हुई
है, इत नै तप का क्या फल है, अथवा तप ही ने यह
महदुपकार किया हो: क्योंकि—

जगन्नाथक शत्रुक पून प्रनो,

गरुडपत्र, शीत, शरय, विनो ।

मिद पावन भावन भक्तिधनी,

लिह लारि करै सुनि-भोज-धनी ।

इत जो हरि भोजन मोहे जने,

अपुनै तन दोहन करू गने ।

कहँ मूरु अशोक मलीन-मली,

कहँ भीरति तंहुँ लोकरनी ।



दे लकी है, रही कही जिह की कही लकी कही
 कही लकी है। हाथ मुझ पर यह न जाने क्या करना
 है। हाथ मुझ पर नहीं पड़ा !

कौन विद्वान्मन्य कही तब विद्वान्,
 कौन यह कही तब तब कही है ।

कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ॥

कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ।

कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ।

कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ।
 कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ।

कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ।

कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ।

कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ।

कौन यह कही तब तब कही है,
 कौन यह कही तब तब कही है ।

श्री कृष्ण

मेजा हैं कि विमान से आपके उतरने ही मंगलाचार की नामश्री सजाये, स्वागत करने के लिये अत्यन्त प्रेम-पूर्वक, लोपासुत्रा, और सब आश्रमवासी धीमान् की वाट देख रहे हैं, तो हमारा आदर स्वीकार कर सधो का मनार्थ पूरा कीजिये, पुष्पक-विमान बहुत शीघ्र जाता है, अरदमेव के समय तक तो आप उसमें अयोध्या पहुँच सकते हैं।

राः—नहपिं जी की आज्ञा तिर नाथे।

राः—तो पुष्पक को फिर इधर फेरिये।

राः—भगवती पंचवटी ? वहाँ की आज्ञा-पालन करने की शोघना में मैं तुम्हारी यथोचित सेवा किये बिना ही जो जा रहा हूँ, उसे थोड़ा देर के लिये रुकना करना:—

राः—देखिये, महाराज देखिये, यह वही श्रेय गिरि है:—

जहाँ बनि-सुंज कुज ललित कुंडर नाहि,

घोरत उलूक भीर, घोर पुषिजाइके।

तानु धुनि प्रनिधुनि मुनि ककर-सुन न्ह,

भयवन सेत न उबरत कहुँ धारके।

इतवत डोलत, मु बोजत हे मोर, तिन-

मोर मुनि, मरत दार विनारके।

पान पुरान धंगरद मर बोरत में,

मारत मय-कुंडर: निहुरि पदगारके ॥ ७३ ॥

हे इमलिन! भगवती गोशायत्री ! आपको उम समय
अत्यन्त मायधान रहना होगा :—

जब राम मेरे समेत हों,
गुनि गुनि विकृत गण-धेन हों ।
तब तब कमल परिमल भरी,
सरि-सीधरनु-भीतल करी ।
मूढ मन्द पाल चलाइयो,
मुडि उनहि नेन कराइयो ॥ १ ॥

न०—भगवती का विचार तो प्रेमानुकूल है किन्तु रामचन्द्र
के माह दूर फरन का कारण तो पहले ही से विच-
रान है ।

मु०—मो कैसा ?

न० मुनिसे जब लक्ष्मण बाल्मीकि के सर्पासन के पास माला
का त्याग कर चले आये, तब यह प्रसव की विपुल-
बलना से पवना कर गंगा जी की धारा में बहायी ।
वना उनक दा बालक हुए, जिन्हे अत्यन्त अतुल्य
रवण भगवती समुन्मत्ता और भर्गायथो रमानल को
न गवा और मा का दुब छूटने ही देवी जारत्री ने
स्वयं इन्हा बालक महर्षि बाल्मीकि के अर्पण कर दिये ।

मु० — [अचक्षुस]

शिव मम जन की बिलसू, अकल-अकल अकल ।

बाल्मीकि मुनि, तब से, काल कालु दिन काल ॥ १ ॥

—और अभी सरयू के मुह से शम्भूक-वध-शृत्वान्त सुनने के कारण रामचन्द्र के जनस्थान में आने की सम्भावना सुनकर, स्नेहनीय लोपामुद्रा के समान, ऐसे ही भय और शंका से प्रेरित होकर भगवती भार्गव्या सीता समेत किसी गृहकार्य के वहाने गोदावरी से मिलने आई हैं।

—भगवती भार्गव्या का विचार बहुत ठीक है, क्योंकि राजधानी में अनेक लोकहित साधनों की सकलता के लिये सबन-कार्य में मग्न रहने से रामचन्द्र का चित्त पटला रहता है। और अब बिना किसी काम-काज के उनका निरन्तर शोकावस्था में पड़वटी खाना महा अनर्थकारी होगा, जो वनलाइये सीता देवी ऐसी दशा में उनका किस प्रकार आरवात्मन करेगी।

—इतना तो भार्गव्या ने सीता से कहा है कि देवी यज्ञान्मजा वैदेही, आज चिरंजीवि युग-त्व की दारुवी वर्षगांठ का दिन है, इस हेतु अपने पुगतन श्वशुर, राजपि, ननुवंश के प्रवर्तक, पापनाशक सूर्यदेव की पूजा निज हाथों के चुने हुए प्रकृतित पुष्पा से करो। हमारे प्रभाव से पृथ्वी पर बिचरने हुए तुमको वन की देखियां भी नहीं देख नसेगी, ननुप्य की तो क्या मानार्थ है। जो आकरपकवानुमार सीता उनका आरवात्मन कर नसेगी और उन्होंने सुनने भी कहा है कि "नन्म, तुमसे सीता का सम्बन्ध कतुराग है, इनमें तुम इनकी

मोः—[मुनकर] सो उसका क्या हुआ ?

[फिर नेपथ्य में]

सोदित करिनि मंग कुललि प्रमुदित परम सो सर में रहपो ।

तिहि नत्त इक नातंग बल मन स्वरि लरि मारन बहपो ॥६॥

मोः—[घबड़ाती हुई दो चार पद चल कर] वचाओ आर्यपुत्र !

मेरे उस दृष्टे को वचाओ [मुधि करके घबराहट में] हाय !

हाय !! वे ही बातें जिनके कहने का स्वभाव-सा पड़ गया

था अब फिर पञ्जवटी को देख कर सहसा मेरे मुख में

निकलती हैं । हा आर्यपुत्र !

[मृच्छिन् होती है]

मोः—धीरज धरो घंटो, धीरज धरो—

[नेपथ्य में]

[हे विमानराज ! यहीं पर टहर जाओ]

मोः—[हृदय सँभाल कर भय और उन्नाद से] जल भरें गरजते हुए

धाराधर की मधुर गन्भीर ध्वनि के समान यह सरस

वाणी कहीं से आई जिसके कान में पड़ते ही तुरन्त मुक्त

अभागिनी में जान-सी पड़ गई है ।

मोः—[स्नेह में झोंसू भर कर]

किनहुँ सों लहि करकुट नाद कों,

क्यन हेत तिया अन तू नई ।

शक्ति संसल और उतकरिटा,

जिमि धनी पुन की मुनि मोरिनी ॥ ७ ॥

[हाय प्यारी जनकी]

मैः—[झर ही झर] इसकी वो गंगात्री को भी आरांका थी ।

मैः—[नेत्रों की बरती मुनकर] हाय यह क्या हो गया !

[चिद नेत्रों में]

[हाय मेरी शंकर धन की मांगिनी ! हाय, प्यारी विदेह-मन्दिनी !]

[स्तब्ध होकर गिरने का शब्द होता है]

मैः—हाय विकार है ! मुझ जनांगिनी का नाम लेते लेते निरुत्तम-नोरज-मयनों को दण्ड पर आपसुत्र अवेत होगये हैं, हाय ! पृथ्वी पर ऊंचीर होके कैसी अशरत्ता-वन्मा में पड़े हुए हैं, भगवती तनला रजा करो, किन्ती तरह इन्हें प्रारु-दान दो ।

(बरतों पर गिरती है)

मैः—हाय मुझे कल्पाने उदि, तनहि वेन काठ ।

हाय निर सुखल करहि में, तिन जीव सनुजन ६१०८

मैः—वह जो बुझ करी, आपकी आशा का अवश्य पालन करोगी !

[संभ्रज सुंभक वनी है]

(त्याग—जनत्याग)

(आकाश सान सेने तथा मयज-वदन मीन में धुन बने हुए तन-दृष्टी पर पड़े दिखवाइ पवने हैं, तनला गयी है)

मैः—[हाय हय मे झर ही झर] मुझे वो देना जल पइता है कि त्रिलोकियाय को तिर वेत आया ।

०—हाय प्यारी जानकी ! प्राणवल्लभा जानकी !

०—(प्रणय-पूर्वक कोप करती हुई गद् गद् स्वर से घाप ही घाप)
 आर्यपुत्र ! आपका यह सब कोरा दिखावा है, आप
 करते और हैं कहते और हैं । (आँसू भरकर) अथवा
 हाय ! मुझ वचनमयी अभागिनी का नाम ले-लेकर
 पुकारते हुए आर्यपुत्र के संग, जिनका शुभ-दर्शन जन्मा-
 न्तर में भी दुर्लभ था, ऐसी दशा में कब उचित है कि मैं
 निर्दयता का वर्ताव करूँ इनका और मेरा हृदय तो
 एक ही है ।

०—(चारों ओर निराशा के साथ देखकर) हाय यहाँ तो कोई
 नहीं है ।

०—भगवती तमसा, इन्होंने मुझे अकारण परित्याग भी कर
 दिया है, पर तो भी इन्हें इस प्रकार देख कर मेरी हृदया-
 वस्था कुछ और ही हो रही है. जिसे मैं न जानती हूँ और
 न कह सकती हूँ ।

०—धेटी, मैं इसे जानती हूँ—

निज-पातन-प्रेम-समागम की नहीं घास, उदाम भरी दुचताई ।
 अपराध बिना निरवासित हूँ, तन छूँन बियोग मलिन सदाई ॥
 पिरहागि पिधा सहि भारी अर्य, तिहि देखन भेटन को अकुलाई ।
 मुनिके दुख की बतियाँ पिपकी, सरला जियकी छतियाँ भरिलाई ॥१३

०—देवी,

सरम साँतल तो कर-पसियो,

जनु सदेह सनेह प्रमदता ।

अजहुँ मो मन रंजन जो करै,

कित गई पुनि तू हिप-हारियाँ ॥१४॥

- रा०—[पहचान कर] क्या प्रिया की सखी वासन्ती है ।
- वा०—महाराज, शीघ्र चलिये जटायुगिरि की शिखर से सीधे हाथ की ओर सातार्तीर्थ के आगे गोदावरी में धँसकर देवी जानकी के पुत्र की रक्षा कीजिये ।
- सा०—[घ्राप ही घ्राप] हाय, तात जटायु, आज आपके बिना यह जनस्थान नूना-ना लगता है ।
- रा०—[घ्राप ही घ्राप] हाय, वासन्ती के वाक्य तो बड़े ही नर्म-भेदाँ हैं ।
- वा०—इधर आइये महाराज, इधर ।
- सा०—भगवती तमसा ! क्या सचमुच ही दनदेवियाँ भी मुझे नहीं देख सकतीं ।
- त०—अरी बेटों, मन्दाकिनी देवी का प्रताप नम देवताओं ने दृढ़ कर है, फिर तुम धार धार क्यों डरती हो !
- सा०—तो चलो हम भी पीछे पीछे चलें ।
- [सब जाते हैं]

(स्थान-जनस्थान, गोदावरी तट)

एक छोर से राम और वासन्ती वन तथा दूसरी छोर से साँला
छोर तमसा का प्रवेश]

राम—[आते हुए] भगवती गोदावरी ! आपको नमस्कार है ।

सौः—भगवती तमसा, जब यह इतना बड़ा होगया है तो न जाने कुसल-लव कितने बड़े हुए होंगे।

तः—जैसा यह है वैसे ही होंगे।

सौः—हाय, ऐसी अभागिनो हूँ कि मैं केवल आर्यपुत्र ही ने नहीं किन्तु पुत्रों से भी अलग हूँ।

तः—भाग्य में ऐसा ही क्या था।

सौः—मैंने पुत्र जनके क्या किया जो छोटे छोटे विमल कोमल कान्तिमय, रवेत दस्तनावली द्वारा दोम कपोल वाले निरंतर मधुर मनोहर सुसकराने हुए काकपक्ष [इन्कें] रखाएँ मेरे पुत्रों के युगल सुन्द-कमल का आर्यपुत्र ने अच्छे चुम्बन न किया।

तः—भगवान सब भली करेंगे।

सौः—भगवती तमसा, प्यारे पुत्रों का स्मरण करने में मेरे मनमें दूध भर आया है और उनके बिना के निरवस्थावती होने में मैं सगुमात्र के लिए समारिणी हो गई हूँ।

तः—इसमें क्या कहना है, मन्तान तो स्नेहातिशय की परमाकाष्ट तथा माता-पिता के परस्पर अन्तःकरण का घन्धन है—

सहि मनेह कद्रुत्प जई हर्षति त्रिष सयन ।

इरत एक मुन झाइ हुई रिमि सो मर-भाजन ।

नित आनन्द मय अन्धि अरल कद्रुत्प जे प्यारी ।

'मन्दन' कहियत मोइ मुनग सुन्दर सुखकारी ॥१०॥

सोः—[देख के छोड़ नर छार ही छार] इसे आर्यभुव ने खुब
पहचान—

सोः—मिद की सुधि रामनु जानि परै,
जिद में दह मोर पहारी मुहायी ।
नित या संग मान नैतनी बहू, *सुहायी*
निहि पै बरै छानि प्रमोद मवायो ॥ २० ॥

सोः—महागज यहाँ पर दैटिये—

सुही दैमनि चंभनी चोगी मिला,
बदली हुनभो चहुँ सोरन एहरे ।
मिद संग जहाँ हुन सोपन हे,
बनगत विनोद भो सुखगार ।
छा. दैटि जिने हुन नूतन दै,
हुय प्यारी एरावन चार सुहार ।
बबलौ मूग के लनु धरे ररे,
हुँ हुँ छत न दैटि लटि दिहारे ॥ २१ ॥

सोः—जय तो यह देखा लगी जाना [सोके हुए हुन हुनो जय
देखे है ।]

सोः—[छार ही छार] मगरी बानसनी । हुने दिह के हुनो
मेरी दौरे आर्यभुव की या बजा बजा करनी । छार छार
या ये ही आर्यभुव है, यहाँ बबलौ है, यहाँ प्यारी
मगरी बानसनी है, यही विविध मन्त्राद विधानों के
मगरी मंगलकारी मन्त्रादकारी प्रयोग है, वे ही प्रयोगों में
प्यारी हुन के मन्त्राद बनेनीके छार-बबली-मन्त्र है, यही नै-

वा०—मधु बरसायत विपिन-द्रुम देह सब,

फूल घाँ फलनि के धरघ मन भाये हैं ।

संग में आमोद खिले-कंजनु को लैके मंजु,

मोद मों पवन करौ बीजना मुहाये हैं ॥

बहकि घहँ धा पंछी गाओ कल-कंठिन सों,

बैतालिक जनु ताल के उमंग द्वाये हैं ।

राजोचित सनमान साजो सयै क्यों मु धाज,

महाराज राम पुनि यहि वन द्वाये हैं ॥२४॥ X

रा०—सखी वासन्तो, आओ यहाँ बैठें ।

वा०—[बैठकर घाँसू भरकर] महाराज, कुमार लक्ष्मण तो अच्छे हैं ?

रा०—[धनसुनी करके]

कर कमल सों दै नील, घाँ नीवार नव नून विधि भली ।

पादप बिहंग कुरंग पोसे चाड चित जे मँधिली ॥

तिन देखिकें जिय सोच व्यापत धकथ अति दुख की कथा ।

करि बज्रहिय कोऊ विदारन, साल सालत सर्वथा ॥२५॥

वा०—महाराज ! मैं पूछती हूँ कुमार लक्ष्मण तो कुशल से हैं ?

रा०—(आप ही आप) अरे इस 'महाराज' के कहने मे तो बड़ी व्याज-स्तुति भरी है, यह तो केवल स्नेह-शून्य सम्बोधन है । वस लक्ष्मण की ही कुशल पूछने में इसका कण्ठ भर आया है और नेत्रों से नीर बहने लगा, इसमें हो न हो, यह सीता का भी सब वृत्तान्त जान गई है [प्रगट] हाँ कुमार अच्छी तरह हैं ।



महा शंभो शंभे, नृपवरि वै वा विरिभो ।

महो ममो शंभे, वरु महे वा मंदि नर भो ॥ ३३ ॥

सीः—(जन ही जन) मरती वासन्ती, तुम क्यों कहेर हो जो
तुमरी आर्षकुत्र को और भी दुख दे रही हो ।

राः—वह कुछ पोड़ा ही कह रही है, मोह और शोक इन में
मद कहला रहा है ।

राः—ममो, हमसे विवाह और क्या करें—

नृपवरु के मे विरिभे वा नरुभुगे वरिभे लोकर ममो ।

वरु वरिभे ममो के नरु मंदि वरुभुगे ममो लोकर ममो ॥

नृपवरु नृपवरु को वरिभे लो विरु मंदि लोकर ममो लोकर ।

वरु मंदि वरु वरुभुगे ममो के नृपवरु मंदि विरिभे के लो वरुभुगे

सीः—(जन ही जन) आर्षकुत्र ! जो जो सीरी वासन्ती है ।

राः—हाय ! तुमरी वासन्ती तुम क्यों हो ?

सीः—हाय ! हाय !! आर्षकुत्र तो विरिभे विरिभे जन रो रहे हैं ।

राः—शंभे, तुमिभे लो मम वरुभुगे तुम लोकर लो मंदि की
वरुभुगे मम है वरुभुगे—

वरुभुगे मम वरुभुगे मम ।

वरुभुगे मम वरुभुगे मम ॥

वरुभुगे मम वरुभुगे मम

वरुभुगे मम वरुभुगे मम ॥

भला होती कैसे, मृगनपति पै या विपिन में ।

बहो स्वामी दीजे, उतर यहि कौ सोचि मन में ॥ २७ ॥

सी०—(आप ही आप) सखी वासन्ती, तुम बड़ी कठोर हो जो
दुखी आर्यपुत्र को और भी दुख दे रही हो ।

त०—बह बुद्ध धोड़ा ही कह रही है, स्नेह और शोक उस से
सब फटला रहा है ।

रा०—सखी, इसके सिवाय और क्या कहें—

मृग-सायक के से दिलोल महा भय-भूरित चक्रित लोचन बरते ।

कर कर्मित गर्भ के भार सौं जो धलनाइ रही तनमें अति भारी ॥

मृदुमंडु मृगाल-सी बोनल जो नित चंद्रमों जाकी हुषंद उज्जारी ।

बन बीच काऊ रजनीचर नीच ने सुन्दरी मोई विनामि के टारी ॥२८॥

सी०—(आप ही आप) आर्यपुत्र ! मैं तो जीती जागती हूँ ।

रा०—हाय ! प्यारी जानकी तुम कहाँ हो ?

सी०—हाय ! हाय !! आर्यपुत्र तो दिलर दिलर कर रो रहे हैं ।

त०—देटी, दुखिया के पास अपना दुख दूर करने को रोता ही
एकमात्र उपाय है क्योंकि—

उपदि पूं तजान जै भई ।

उज निरुमन तानु प्रतिबिम्ब ॥

द्विजुल शोक दरा नधि ह तथा

रदन धीरज को मनुजान है ॥ २९ ॥

बा०—महाराज, घीर्ती को विस्तार कर धीरज धरना चाहिए ।

रा०—भरती क्या कहती हो—धीरज !

भीत गये धारह दरम, बिन सीया-सी याम ।

नामु नाम तक हूँ भिद्यो, जियत तक यह राम ॥३३॥

सौ०—आर्यपुत्र की इन बातों ने मुझे मोह लिया है ।

त०—यथार्थ है घेटी—

प्रेम पगे जासों परम, जिय की रुचि सरसात ।

दारन मोक समूह मुनि, अति अमिय दरसात ॥

मेरे पिय के ये बचन, मूढु बढु जुगल अपार ।

का नहीं दारत मुय हिये, अमिय गरल बी धार ॥३४॥

रा०—भरती घामन्ती,

मौर्यो मनु तिरछी अनां, दरछी बी बिमलीन ।

बा हिय मारो मोक बी, मैने दिपा मरी न ॥३५॥ x

सौ०—(आप ही आप) मैं लेती मन्दभागती हूँ कि जिनके कारण

घारुदार आर्यपुत्र को दुःख होता है ।

रा०—यही धीरतापूर्वक अपने हृदय की धाम लेने पर भी पूर्व

परिचित अनेक प्रिय वरारों के देखने ने दुःख का आवेग

आज फिर अनिवार्य होगया ।

दुभित दिखेदर मोक को, हिय में उरति दिहो ।

स्वयं न तिहि बनेद बिदे जो जो जगल बडोर ।



रा०—हे कठोर हृदय जानकी, इन दृश्यों के देखने से यह लगता है कि तुम यहाँ कहीं विचर रही हो, फिर मुझ अभागे पर दया न करने का क्या कारण है:—

हा हा! प्यारी पटत हृदय यह जगत सून्य दरसावै ।
तन-बन्धन सब भंये सिधिल से अन्तर-ज्वाल जरावै ॥
तो बिन जनु द्यूत जिय तम में, छिन छिन धीरज छीजै ।
मोहावृत सब घोर राम यह, मन्द-भाग्य का कीजै ॥३८॥

(मूर्च्छित होते हैं)

सी०—हाय हाय आर्यपुत्र फिर वेसुध हो गये !

वा०—धीरज धरो महाराज, धीरज धरो ।

सी०—(आप ही आप) हा, आर्यपुत्र केवल मुझ अभागिनी के लिये समस्त संसार के मंगलाधार रूप आपका जीवन प्रतिक्षण दारुण संशयावस्था में पड़ रहा है, इससे बड़ी भारी विपत्ति की आशंका उपस्थित हुई है । हाय, अब मैं क्या करूँ ।

त०—बेटी, घबड़ाने का काम नहीं है रामचन्द्र का पुनर्जीवन तुम्हारे ही पाणि-पल्लव के स्पर्श से होगा ।

वा०—(आप ही आप) क्या अभी तक चेत नहीं हुआ ! हाय प्यारी सखी सीता तुम कहाँ हो ! अपने प्राणेश्वर की रक्षा करो ।

सी०—(शीघ्रता से पास जाकर राम का हृदय धीरे सलाट घुती है)

सी०—(घाय ही घाय) आर्यपुत्र, अभी तक आप वही हैं ।

रा०—हिन मन सीतल हीतल सुग-भद मृदुल मंजु मन भायो ।

लगन दुही कर लहो सलिन, जिन सबजी दजहिं लजायो ॥४०॥

(मेमा कहकर पकड़ते हैं)

सी०—(घाय ही घाय) हाय हाय, प्राणपति के प्रियस्पर्श से मोहित होकर मुक्त से चूक हो गई ।

रा०—सखी वासन्ती, आनन्द के नारे मेरी इन्द्रियों अपने अपने कर्तव्य पाननमें शिथिल-सी हो गई हैं. मेरे वस की यात नहीं रही है. इससे थोड़ी देर तक इनके हाथ को तुन्हीं धामे रही ।

वा०—(घाय ही घाय) हाय हाय, इन्हें तो उन्माद हो गया !

(सीता जल्दी से हाथ छुड़ाकर दूर हो जाती हैं)

रा०—हाय अनर्थ हो गया ।

मो जइ बग्गिन स्वेदनय, कर सन मन मुद-शगि ।

द्विटकि परयो कित जइ कैरत, तालु पसीजन पानि ॥४१॥

सी०—[घाय ही घाय] हा. अभी इनकी निगाह ठीक नहीं हुई है. ठीक ठीक वस्तु पहचानने में असमर्थ तथा चकराते-सी मालूम होती है—इससे जाना जाता है कि आर्यपुत्र अभी अपने आपे में नहीं आये ।

रा०—[स्नेह में देख कर घाय ही घाय]

धम-सीकर-कम मो लयी, कौरति ली पुलकाति ।

प्रिय-तल-परस उमंग सी, बेटी घर दरसाति ॥

हैं उसी से पैदा हुआ निःसन्देह यह विकट उन्माद है जो मुझे अनेक कल्पनाओं में डाल कर धार धार सताता रहता है ।

नीः—आर्यपुत्र की इस दशा का कारण मैं ही वरुण-हृदयवाली हूँ ।

वाः—महाराज—

दमकंध को वह गृध्र-नासित लौहमय रथ देखिये ।

पुनि तामु खर-भीषन ददन कर अस्थि अथ अदरेखिये ॥

तिह-पंख हनि, रिपु लैंगयो नभ-पंथ सों तुव भामिनी ।

अनि बिलबिलाती विषस पल पल दनकि, जनु धन-दामिनी† ॥४३॥

सीः—[भय से आप ही आप] आर्यपुत्र तात जटायु को यह दुष्ट मारे डालता है और मुझे भी हरे लिये जाता है, आइये आइये शीघ्र वचाइये !

राः—[शीघ्र उठ कर आप ही आप] महात्मा जटायु के प्राण को और सोता को हरने वाले अरे पापी ! खड़ा तो रह कहीं जाता है !

वाः—हे देव, राक्षसकुल-धूमकेतु, अभी तक आपका क्रोध ठंडा नहीं हुआ है ।

सीः—(आप ही आप) हाय मैं भी पागल हो गई हूँ ।

राः—यथार्थ मैं अब के तो यह प्रलाप ही है ।

अनुकूल-मुन्दर-जतन-मय, नित-दिरह-दुख अपनोद में ।

बहु धीर-नासन-जनित अदभुत धीर-भाव-विनोद में ।

† पल पल विकल दनकति विपुल जनु नपल धन में दामिनी ।

अविदित विधा-कर, गिय-विरह तब शत्रुघ्न-कर भौं रसौ ।

अबहो विपोग अघाह भिखारि जाह कहु का विधि मछो ॥३३३॥
 शीः—(आग ही आग) यह निरावधि है तो हाथ अब मेरे प्राण
 कैसे रहेंगे ?

राः—(आग ही आग) हाथ का करूँ—

अहाँ करिगत सुगतीव मित्रता विफल,
 बेसाथ दुल-बह कानर को भारी है ।
 कहु न प्रभंजन-कुमार को अर्पति अहाँ,
 जामदान हूँ ही वृषि अहित विधारी है ।
 वध न बनान मरै विगहरमा को गूण—
 तथा त्रिह राम की अहुन कथ्यारी है ।
 गति न अहित-हीर काननु मे आनी तहाँ,
 अहाँ आय नू समानी हाथ पाकावारी है ॥३३४॥

- श्री —। आग ही आग इमसे तो पशुभा ही विपोग अरुद्धा रहा ।
- रा —समी कामन्ती, अब जैसे जैसे शिव परार्थों का दर्शन होगा
 जैसे जैसे राम का कष्ट बढ़ना ही जायगा। सब वाले मुझ
 सब नष्ट करने लगेंगे। हाथ, मैं ऐसा अभागा हूँ कि मेरा
 'मनना मरुत' हो या दुःख पहुँचाना है इससे मुझ अब
 बात ना
- — यह सब दुःख मे समना है मरे मन का) ना करे आ ही
 (उ अब कथ ही उरुँ है ।
- — वहा हनुव धैर्य को, हर सब ना विरहीव कुशलव ही
 वरुण्ट का समव करने समन्ती मरुतीही व समन्व
 हया है ।

सी०—माता, बुद्ध तो दया करके ठहरिये और ज़रा भर मुझे उनके दर्शन कर लेने कीजिये-हाय, फिर मिलना कहां !

रा०—अश्वमेध यज्ञ के लिये मेरी भी एक सह-धर्म-चारिणी**

सी०—(घबरा के भाव ही भाव) वह कौन है आर्यपुत्र ?

रा०—सीता की सुवर्णमयी मूर्ति है ।

सी०—(भाव ही भाव) यथार्थ मैं आप स्वनाम-धन्य आर्यपुत्र ही हूँ, उस परित्यागमयी लाज का काँटा अब मेरे हृदय में दूर हुआ ।

रा०—उसी के दर्शन से शोकाक्षु बहाते हुए इन नयनों को शान्त करूँगा ।

सी०—(तनना से) वह धन्य है जिसका आर्यपुत्र इतना आदर करते हैं और जो इनका मनोविनोद कर संसार की सब सुमंगल आशाओं की आश्रय बनो है ।

रा०—[सुनकरानी हुई स्नेह में सीता को गले लगाकर] देटी, इस में तो तुम अपनी ही दड़ाई करनी हो

सी०—[मलज नीचा मुच करके भाव ही भाव] भगवती तनना में मैंने अपना हँसा कराई ।

रा०—इन नमनाम से आपको बड़ा कष्ट हुआ, मैं ही इन शोकोदीपन का कारण हुई—और जाने के लिये, जिसमें आपके कार्य की हानि न हो वैसा ही कीजिये ।

सी०—[भाव ही भाव] वासन्ती ही मेरी वैरिन होगई ।

रा०—आइयो देटी चलें ।

अंक ४

अथ विष्कम्भक

[दो नरन्वियों का प्रवेश]

एक—मौषिकों, देवों आदि अनेक अतिथियों के आने तथा उनके नरन्वियों यथापि नामों उपस्थित होने से भगवान् शान्ति का आसन कैसा रमणीक लगता है, जहा !

दूसरा—मम के तिन पुत्रों को लोको लोके

मम तिन हारिणों के लोके लोके

तकें पौरव में आदि बधिके रहणे को लोके,

मम मम पौरव हारिण हारिण है।

दो नरन्वियों अनेकों लोके लोके लोके लोके,

मम लोके लोके लोके लोके है।

दो नरन्वियों अनेकों लोके लोके लोके लोके,

मम लोके लोके लोके लोके है।

मौः—इन सुदृष्ट अतिथियों के आने से आज का पदना-निर्वाण तो हो चुका।

दूसः—बड़ा कलह है निम्न, सुदृष्टों के साथ सुदृष्टों यह अन्वेषण शिष्टाचार बराबर है।

मौः—अरे भगवन्, इन अतिथियों का क्या नाम है जो सब बड़े और सुदृष्टों में सुदृष्टों का नाम है।

दूसः—यह सुदृष्ट, बड़ा अन्वेषण है, जानता नहीं कि शूद्रादि के आसन से अन्वेषणों के साथ, नरन्वियों

सौ०—समयिन से उनकी भेट यहाँ हुई या नहीं ?

भा०—अर्भी हाल ही वशिष्ठ जी की आत्मा मे भीअरुन्धती कौशिल्या रानी के पास यह कहने गयी हैं, कि उन्हें अपनेआप जाकर विदेहराज से भेट करनी चाहिए ।

सौ०—जय तक ये बड़े-बूढ़े आपस मे मिलें, तब तक हम भी क्यों न विद्यार्थियों के साथ खेलकूद कर आज की छुट्टी मनावें ।

[दोनों निकलते हुए]

भा०—देख, यह पुराने वेद पारंगत राजर्षि जनक यहीं हैं जो भगवान वाल्मीकि और वशिष्ठजी से मिलकर यहाँ आश्रम के बाहर वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए हैं ।

छोकर की सी तन बदन, जाके दिन भर रैन ।

सोय सोच की दी लगी, सुलगत चैन परै न ॥ २ ॥

[जाते हैं]

॥ इति विष्कम्भक ॥

[जनक आते हैं]

ज०—सोचनु मुता की विषम विपदा मद्य मे जिह काल ।

हिय होत हा ! घायल बही, दाड़े विधा बिकराल ।

धीते दिना बहु तउ उलहि मन सोक क्रोध बिसाल ।

चलि जाय पै जनु सोम क्षारो निरत सालत साल ॥ ३ ॥

हाय, यह दारुण दुःख मुझ से सहा नहीं जाता इधर वृद्ध तो अवस्था और असह्य विपदा की विधा घेरे हुए, उधर पराक सान्त्वन आदि निरन्न निर्जल झ्रत करने से गोंठ का रक्त-मौस भी सूख गया, किसी काम का रहा नहीं,

के

इस पर भी यह शरीर नहीं छूटता । आरमभान करके ।
 छुटकारा कहाँ ? क्योंकि शयियों के चूषनानुमार अन्ध
 पाभी को अन्धतामिष्यादि घोर नरक भोगने पड़ते हैं
 परमों हो गये फिर भी जैसे जैसे मोषना हैं, मेरा दु
 पटने के बदले प्रतिक्षण और भी उम रूप धारण का
 हो जाता है, इसके शान्त होने का लक्षण कोई भी तो न
 दिखाई देता । हाय क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, हाय वे
 मोना जगन्माता समुन्धरा के पवित्र गर्भ से तो जन्म
 दिन्तु न जाने क्या ऐसा भाग्य में लिखा लाई तिमहा व
 परिणाम हुआ । हा इमी लाज के मारे मैं जी शोष व
 रा भी नहीं सकता , हाय बेटी, हाय !!

दिनक रोषण पुनि ईगन विनु हेनु, समकाल भभी ।
 कामल कभी अँ नुन्दरी कल कलन निन द्यनापत्री ।
 गुणगल करि कहु की कष्ट संवुच मनु काले घनी ।
 विनु भाव के गुण वंजमुच की घेजई सो कई मुधि वनी ॥१॥
 भगवती अथवा, मधमुष ही गुम चर्फी कटोरा हो ।
 विदु गग, चरित, अमवनी, गुमलद महलज प्रकरी ।
 गुवव-गु-र्वि धनु जगल निर प्रविष्ट मन्वरी ॥
 धन काइ विना मम अनी गुण लेखने कपल भई ।
 निर ल मुक्त की विरति लागो कहु मरी बेने गई ॥२॥ ६

[लेख्य मे]

[इस कथने अन्तकी घोर महलगी का भी हृष्य करे]

३०—[लव वर] यह तो कपुहों के वीर भगवती अ
 न्यदा आते हैं ।

[उठकर] फिर महारानी किसे कहा [झप्टी तरह देखकर]
 हा, क्या यह महाराज दशरथ की धर्मपत्नी प्यारी सखी
 कौशिन्या हैं ? अथ इन्हें देख कर कौन विश्वास करेगा
 कि यह यहाँ हैं ।

बनला-मरिच कमनीय छति, दसराथ भवन में जो लती ।

पद 'सरिच' सोऊन नहिँ उचित, माप्याइ धी बनला बनी ।

दिधि बान बम छति बिचति लहि, यह हाथ कौनिल्या दुही ।

त्रिप-सोच की मारी लगे अद, छौर की बपु छौर ही ॥६॥

यह छौर एक दूसरा सुदरा का फल है ।

नोहित त्रिप दामन रसो, नित उच्युव को भौन ।

छति कमलप सोई लगे, मनहु उरै पै लौन ॥७॥

[अरुंधती कौशिन्या तथा बंधुओं का प्रवेश]

अः—मेरा तो यही कहना है कि आप स्वयं चलकर विदेह राज
 में मिले और यही तुम्हारे पुत्रगुरु की आज्ञा है, इन्हींलिए
 मुझे आपके पास भेजा है, फिर पद पद पर आपसे
 आशंकित होने का क्या कारण है ?

कः—देवी मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप स्वयं का मेमाल का
 भगवान वशिष्ठजी की आज्ञा का पालन करें ।

कौः—यह सोच कर कि मुझे जन्मी मिथिलाधिपति में भेद
 करना है मेरे सब दुःख एक नाथ उनड़े आते हैं, और
 शौरासुख हृदय को मेमालना कठिन होगा है ।

अः—इमने क्या सन्देह है ।

कौ०—हाय मेरा दुःख बढ़ता ही जाता है ।

[बेसुध होकर गिर पानी है]

ज०—हाय हाय यह क्या हुआ ?

अ०—राजपिं, हैं क्या !

गुण-धनुन मिमुनन संग सुश्रमय उन दिननु की मुधि धरी ।

निरगत मनेही तुमहि, अब सो घाह कमकी यहि धरी ।

ऐसी दया लहि तुव मखी यह अति विभूह सम्रात है ।

जिब कमल-कोमल कुल-निपन को नैक में कुम्हिलान है ॥१२॥

ज०—अरे हाय, मैं ऐसा अभागा जन्मा हूँ, कि इनने दिन पीछे मिलने पर भी अपने प्यारे मित्र की रानी को प्रेम-पूर्वक नहीं देख सकता ।

प्रिय, अभिन्न-उर पुन्य, सुदय, समधी, हितधारी ।

तनधारी-मानन्द अभिल-जीवन-फल-भारी ।

यह तन अथवा जीव अधिक इनयों वा प्रियतम ।

रहे न का महाराज घटन वन भीदवरध मम ॥१३॥

हाय हाय ! यही वह कौशिल्या है—

यदि भई धनवन कचहुँ इनकी कान्त सों एकान्त में ।

जिज निज अपार उराइनो दम्पति दियो मोहि जिह ममें ।

जित प्यार में वा कोप में मध्यस्थ होउन की रह्यो ।

वस तासु मुधि दाहति हृदय अब जात नहि यह दुख सख्यो ॥१४॥

अ०—हाय, बहुत देर में इनकी सौम नहीं चलती और हृदय धड़कना भी बन्द हो गया है ।

ज०—हाथ प्यारी सगी ।

[कमरदल से हाथ में जल लेकर छिड़कने हैं]

मुहद तुल्य दिग्वाय इयामयी,

प्रथम पूर्ण मद्रा अनुकृपना ।

यनि महा पुनि दारन क्यों विधे,

सय कर मन में द्यति वेदना ॥१५॥

पौ०—[घेत में आकर] हाथ घेटी जानकी नू कहाँ है । विवाह-संग्रार की उमंग से रमणीय निर्मल-मधुर मुसक्यान भरे, तेरे मनोहर भोले-भाले प्रफुल्लित सुग्य-कमल का अभी तक मुझे स्मरण घना हुआ है; आ घेटी, विलसितचन्द्र-चन्द्रिका के समान, अपने कोमल-कमनीय शीतल-शरीर ने छटा-छिटकती हुई मेरी गोदी की शोभा बढ़ा । महाराज सदा यही कहा करते थे कि यह जानकी परम-पूज्य रघुवंशियों की वधू है किन्तु हमारी तो फिर भी जनक के सन्दन्ध से घेटी ही लगती है ।

क०—ऐसा ही था महारानी, ठीक है ।

सोहे महीप सुत चार सुरूप धारे ।

धी राम किन्तु सय सोहि विशेष प्यारे ॥

योही वधनि मधि धी मिथलाकुमारी ।

शान्ता सुता सन रही नृप की दुलारी ॥१६॥

ज०—हाथ प्यारे मुहद दशरथ महाराज, तुम ऐसे ही थे तुम को कोई कैसे भूल सकता है !

पूजन कन्या पद्म के, धर पद्महि यह रीति ।

किन्तु रहो में पूज्य तुव, नाते सों विपरीति ॥

और किन्ना बालक है जो अपने मृत्युत दुग्ध अंगों से
हमारा अर्थ शान्त कर रहा है।

अः—[कान्दासु भरका कला कान ही कान] यही भगवती
भगीरथी द्वारा अधिष्ठ कर्णात्तु शुन रहस्य है किन्तु वह
नहीं जानती कि उन दोनों चिरंजीवों में ये से कुछ है या
नहीं।

नर नील मरोरु मी तन स्थानरु कार मरोरु की दृष्टि मात्र ।
बहु हृद को जो कनकी भिय मी त्रिभुज्य मिते भियवन बनार्ये ॥
मिथुला मी मी पुनि दप कनू लगे सुखन्दन ही उदु कर्दे ।
मिथो ही जो केवल देवन मी बन कनू-कनू सुन लगावे ॥१॥
अः—जुने मी यह लगता कि यह बालक कत्रिय प्रहयारी है ।

अः—दौर, क्योंकि—

दौर बालक को पति से मितु मी,

किन्ने विनिग मितु कुम्भे सुखे है ।

कतर विनिग उ पन मने मी,

पति सु सुखला सु विनिग है ।

मैरी कन की कने कौनो कतिन कति,

कौनो मने सु मी मने है ।

दर मी कन, मी पति को कन कन,

कने सुखी मने मने है ॥२॥

भगवती कनधती कन जानती है यह किन्ना बालक है ?

अः—कान ही हन लोग मी कने है ।

शैः—बेटा विरिधीव री।

शः—आ बेटा, [लव को गोद में लेकर धर ही धर] दई भाग मे न केवल गोद ही भरी, किन्तु बहुत दिलों का मेरा मनोरथ भी पूर्ण हुआ।

शैः—बेटा इधर भी आ [गोद में लेकर] अहा, यह बालक न केवल मिलने हुए नीलीयन में धनधान्य वस्त्र संगठित सुन्दर शरीर में, तथा बच्चों की वेशभूषण हुए ललित-कण्ठ वाले मनहरर हसी-क्रीमे लज्जान सुदु-गन्भीर धीमेधर में अपने राजचन्द्र की अनुहार करता है; किन्तु पूर्ण प्रयुक्तित पद-गर्भगत बालों के सुन्दर, इसका शरीर संगर्भ भी वैसा ही सुन्दर है। चिरजियो बेटा, अपना सुन्दर-चन्द्र तो दिखता, वैसा है! [छोटी उर को उठाकर भरी भक्ति निहार तथा प्रेमाशु भरका] गजवि, क्या आप नहीं देखते कि अच्छी तरह निहारने में इसका मुख बेटा वधु जानकी के चन्द्रानन में मिलता है।

शः—देखता है नहीं, मुझे भी वैसा ही लगता है।

शैः—आपका है न जाने क्यों मेरा हृदय उन्नत-स्त हो गया है और सोच-क्रीमे इस अनिर्वचनीय मनोहर मुख में सुन्दर पर सुन्दर मोहनोन्नी धन की है।

शः—मिजा सुन्दर के उन्हाते, गरी यह बर नहनुन्दन। [५०]
 नरो प्रतिविम्बित है यह नहीं, गरी उनकी दुति काहने धन।
 मिर्के उर को बहि को मर भक्ति, मिर्के नर बोर सुरीत सुन्दर।
 वृदा विरि उन्वर क्यों मन देव, कुमारा में मन्वरो इन काय दृश।

जः—(हँसकर) इतने बड़े प्रश्न हुए कि सुन्दर रामायण
उत्तरे में बड़ा प्रयोग है।

जः—(विस्मय कर) जो तुम क्या जानते में बड़े प्रयोग हो तो
कल्पनाओं कि इतराजनों के पुत्रों का क्या नाम है।
और कौन कौन किन नामों का उल्लेख हुआ है।

जः—क्या वह सब भग्न हमने क्या, किन्हीं में भी उल्लेख
नहीं हुआ।

जः—क्या कवि ने उसकी रचना नहीं की ?

जः—यह तो विद्वान् विद्वान् प्रसारित नहीं हुआ। उसी का एक
भाग, हरद्वारा के रूप में देखने के लिये तैयार हो
गया है। अब उसे अपने हाथ में लिखकर बाल्मीकि
जी ने नाटक-रूप में भगवान् भक्तुति के पान भेजा है।

जः—ये किन प्रयोगों में।

जः—किन्हीं भगवान् भक्तुति कामराओं द्वारा उत्तरा
अभिप्रेत कराये।

जः—यह तो बड़े आश्चर्य का बात है ?

जः—क्योंकि नाटक बाल्मीकि जी को उनमें इतनी अधिक
प्रीति है कि उसे कितने ही शिल्पों द्वारा भावनात्मक पर
भेजा है। और फिर भी कहीं कहीं ने गड़बड़ों न हो
जाय इस भय में, धनुषवान् संभारकर हमारे भाई को
सादर कर दिया है।

जः—तुम्हारे भाई भी हैं ?

जः—हाँ, उनका नाम "कावेरी" है।



और राम ने भी कुछ विचार न करके शौघ्रता कर डाली..
यह आश्चर्य है ।

निरत यज्ञ सम घोर यह, सिय-मग अनरथ-पान ।

धालो-दत्त, मम अति प्रयत्न शोधानल चङ्कि जात ॥

समर नाहिं कर चाप गहि, अथवा दै निज खाप ।

अन्याईं कों हनि अर्वाहं, उचित हरन सुन्ताप ॥२५॥

कौ०—हाथ भगवती अरुघन्ती, राजपिं के कोप को शान्त कर
के राम की कित्ती प्रकार रक्षा कीजिये ।

अ०—यहि भाँति निकारत कोप महीं ।

अपमानित मानधनी मयहीं ॥

सुत राम तिहारो दिना करिये ।

नृप घोम सबै जिय से हरिये ॥

यह दीन अधीन प्रजा मयरी ।

प्रतिपालन लोग अबोध भरी ॥२५॥

ज०—प्रजा नाहिं लखिपत घने, निरपराध द्विजपाल ।

अपज्ञानन जन-जरठ अरु, अंग-भंग देहाल ॥

मो जीवन-धन प्रिय-सुघन, रघुनन्दन का अरि ।

चाप साप को काम बहु, अब नहिं बाहु दीर ॥२६॥

(कौतुक भरे दौड़ने हुए बालकों का प्रवेश)

लड़०—अजो "अरुव अरुव" कर के जिस पशु को नगरों में
पुकारते हैं सो हमने आज अपनी आँखों से देखा ।

ल०—अरुव का बर्णन तो पशु-शास्त्र तथा युद्ध-शास्त्र दोनों ही
में किया है, वही तो कैसा है ?

ल०—तुम भी दड़े मूढ़ हो, तुमने उन पार्लट में पढ़ा तो है, देखते नहीं सँकड़ो कृष्ण मिषाही हथियार यदि कदप पाने धनुष लिये इसके साथ हैं—यह तो अधिपतिर सेना ही दिग्गई पढ़नी है, इन पर भी तुमों विद्याम न हो तो जापर पृष्ठ लो ।

लड़०—तो क्यों भाई, ये मय के मय विम प्रयोजन से छोड़े को पेंरि फिरने हैं !

ल०—[गृहा के साथ आप ही आप] जान लिया, टीक, अरथनेध मो विरथाविजयी नृपतरु के अतुलित महत्व तथा जगत् के अन्य सत्रियों के पराभव को फर्माटी है !

[गेदथ में]

दमकन्धर-बुल घटल रिपु, धर्म धुरन्धर धीर ।

साग द्वीप मय खंड में, एक धीर रघुवीर ॥

मार्दी को यह मय-मुरंग, कंठा सुभग अपार ।

अथवा इनके रूप में, सत्रिनु को ललकार ॥१८॥

ल०—[कथा प्रगट करके] अरे इन लोगों के वाक्य फैसे मोधानल पढ़ाने वाले हैं ।

लड़०—क्या कहा गया, पुमार तुम तो पतुर हो सय ममक गये होंगे ?

ल०—अरे क्या माग संसार सत्रिय शून्य हो गया जो तुम इस प्रकार दून को हीर रहे हो ।

तः—[ब्रह्म] कर्म समस्तुय कर्म समस्तुय मरे हैं [अनुभव]।
 अन्तर्गत तो फिर—

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत,

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हैं।

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हैं।

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हैं।

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हैं।

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हैं।

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हैं।

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हैं ॥३॥

[अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हैं]



सु०—आयुजन—

दिनल हृदिपुन सुख कमुर मन विपुल वीर जवान ।
 निर्गमि यह सिमु मखल विधिगो दीर मोहि ममान ॥
 मोहि सुधि आयन परम धृग-धनु मघन घनरवाम ।
 बुनिहमुन-भय-विपुन इमपन सुभगतनु भीरान ॥४॥

स०—सक मन घमि शंखलिन जिन दौगुपी उपात ।
 मम मख बगल गहि कम बुनिन मंग विमाल ॥
 बन्ध-रिक्ति भनमनावा दिगिन जिन रथजाल ।
 निरत मद्रजल सुघनत रवानल द्विरद् कारिद् मान ॥
 जे घरा इन मखन घेन पर बालहि कात ।
 होत मीघे मंग मन लगि हारा बो यह पात ॥५॥

सु०—वन्म, जब नद मिल पर इनका बाल बाँका नहीं पर
 नहने तो निर पर पर मे क्या होता है ।

स०—आर्य, मीघना करों । इनने चारा चार हजारों आश्विन-
 जनों का नकार करना आरम्भ कर दिया ।

हुंइकी की घोरमन रोदा इनकार जकी,
 यदि यदि यह नप दिगिन केंद्राये दे ।
 सुंजनि-पुज जो करति गिरि-वृ जति की—
 सुंजन, निनट्टे कम सुर उपजाये देत ॥
 भाजन भगवन्त विपुल सुट हें टनिकों,
 कारि यह वीर महीनन रं विजाये देत ।

(गैरम में महा कैवहार)

(राजसूय और वज्र कात्र में तब का प्रयोग)

१०—यह राजसूय काह, क्यों न हो, आदित्य को लगे इत्या-
हदकी राजसूय हो न ! ली आओ मे सुन्दारे सामने आया ।

(गैरम में लि कावहार)

११—(गैरम और का) जब क्या फिर भी मे हारे हुए योंका
लक्षण करके सुद्ध से फिर लौट आते हैं और सुद्ध पर
प्रार करना चाहते हैं शिवा विवेकियो !

य वी तत्र मम कोर मे सुद्धपत्र कावहार होते ।

का, योंक लौट आते हैं शिवा मम कावहार को वगैरे ।

यिने प्रयोग लौट आते हैं शिवा मम कावहार को वगैरे ।

यिने प्रयोग मम कावहार शिवा मम कावहार को वगैरे ।

(गैरम-गैरम वृत्त में)

१२—

यिने प्रयोग मम कावहार शिवा मम कावहार को वगैरे ।

यिने प्रयोग मम कावहार शिवा मम कावहार को वगैरे ।

यिने प्रयोग मम कावहार शिवा मम कावहार को वगैरे ।

यिने प्रयोग मम कावहार शिवा मम कावहार को वगैरे ।

१३—(गैरम और का) जब ... इस सुद्धपत्री का ... कावहार
कोर को कावहार सुद्ध और सुद्ध केने हो प्रकार को है, इन
कावहार इने कावहार का इने हो प्रकार को है ।

१. (१) ...
 (२) ...
 ...

...

२. ...
 ...

३. ...

४. ...

५. ...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

एक क्षण में समझती प्रीति हो जाती है, इसी को योग
सूक्तियों का अर्थ का अर्थ कहते हैं और इसे ही
अनैश्वर्यीय विद्ययाय अहं से नाम से कहते हैं ।

मन्त्र वेद मन्त्र-ज्ञान, जहाँ एक हीर का अर्थ ।

विदुः शक्ति का अर्थ, एक अर्थ, जहाँ ही ॥१०५॥

शक्ति का—[एक क्षण में अहं ही अहं]

शक्ति का अर्थ अहं, अहं अहं अहं अहं अहं ।

अहं ही अहं ही अहं ही, अहं ही अहं ही अहं ही ।

अहं ही अहं ही अहं ही, अहं ही अहं ही अहं ही ।

अहं ही अहं ही अहं ही, अहं ही अहं ही अहं ही ॥१०५॥

अर्थ—

अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही ।

अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही ।

अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही ।

अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही ॥१०५॥

शक्ति का—[अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही]

अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही

अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही

अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही

अहं ही अहं ही अहं ही अहं ही ॥१०५॥

विसद जानि सकै घन छातुही,

मुनरजद सयै रघुवंस कौ ॥२३॥

सु०—(घाँवों में घाँव भर घाँव गले लगा कर)

तुव नाम लक्ष्मिन ने कियो जो इन्द्रजीव निदान ।

मो नय लगै मोहि जा घरी उनु कालि-भीर्मी दान ॥

अप तिनहुँ के तुम पुत्र, धारन यारता-प्रत-भाज ।

धनिधन्य इनरथ-कुल-प्रतेष्टा विमल धाई दान ॥२४॥

सं०—(कष्ट के साथ)

बड़ा प्रतिष्ठा होइगी, मो कुल कौ मतिवान ।

इत जेहे ही के नहीं, जय बोज सम्मान ॥

साही दुःखनों धनि करे, विन्नातुर दुखि-दान ।

मो पितु दुग बन्धनि सहित, निमिदिन रहत मलीन ॥२५॥

सु०—हाय, चन्द्रकेतु की ये दाने सुनने में हृदय विदीर्ण हुआ जाता है ।

सं०—(धार हो धार) अहा, अन्त-दग्ग ने मिलित रम का नयार मो रहा है—

जिनि अन्त प्रकुलित कुमुदिनी कौ उदित पृथ चंद्र ।

तिनि भरत, हिय में द्रव जको धनि अन्त अानंद ॥

किन्तुः—

तः—जो वन्दु अपनी ही है भला इसके स्वीकार करने में
मंदाय कैसा ? किन्तु बात यह है कि वनवासी होने के
कारण हमें रथ पर चढ़ने का अभ्यास नहीं ।

सुः—वत्स, तुम दर्प और सौजन्य का यथोचित वर्ताव करना
जानते हो, जो वहाँ तुम ऐसे को इन्द्रायु-युल-कमल-
द्विवाकर राजा रामचन्द्र देखते तो उनका हृदय प्रेम में
गद्गद् होजाता ।

तः—सुना गया है कि वे राजपिं दड़े सज्जन पुरुष हैं—

साँवहि हनहुँ न मग्न-विषनकारि ।

जो रहे छातु नित्र हिप दिवारि ॥

गुनवल राम को जगत नाहि ।

बहु मानत को जन पूज्य नाहि ॥

पै सब हथिनु को तुष्य मानि ।

तुव हप-रकर लोः बही दानि ॥

सुनि ताहि हनहुँ विष चढ़यो गेम ।

एत, और बहु नहि विषो दोम ॥६०

सः—(मुन्कगत हुआ) क्या आप का हमारे पूज्य-चांग नाम
के प्रभाव को दड़ाई दुगो लगती है ।

तः—अर्जुन दुगो लगे या न लगे, पर इतना मैं पृथक्ता है कि
राजा रामचन्द्र तो दड़े धीर स्वभाव के सुने जाते हैं ।
वे न तो स्वयं अभिमानों हैं न उनकी प्रजा को अभिमान
हाना है, फिर वदलाइये के लोग उन्हीं के आदेशों होकर
ऐसी राहनी भाषा क्यों प्रयोग करते हैं : देखिये—

प्रसन्न मैत्रिक बोरनि मारिके,

प्रगट मन्थ करा तुम बोरता ।

परगुण सुके जिह मानने,

जनि बड़ी उनही कहि घात यों ॥३२॥

तः—(हैम कर) श्याम मानलो रि उन्होंने परशुराम जी को
भौंहरा दिया, पर हमने भी क्या बड़ी प्रशंसा की बात हुई ।

जान की बल द्विजन में यह स्वयं-सिद्ध प्रमान ।

बहु को बल सत्रियनु में जग प्रसिद्ध महान ॥

मन्त्र-धारी द्विज रहेऊ मृगुयंननि महाराज ।

बहु निनहि जय करि राम ने कियो कौन दुजय काज ॥३३॥

तु०—अब इन दोनों की क्रोधानल भड़क गई—

तः—(दिग्दर)

कौनसा यह पुरर उरज्यो नयो जग के नाहि ।

जानु लेने परमरामहु बरि-पुंगव नाहि ॥

मत सुबनहि अन्ध को जिन विदुल शीरो दान ।

नितनात पावन चरित को नहि जान रंजक-ज्ञान ॥३४॥

तः—अज्ञी रघुनति का चरित छौर उनकी महिमा कौन नहीं
जानना, यदि कुछ कहने की बात हो तो कहा भी जाय,

किन्तु हम अपने मुख से क्या कहें—

उे बडे जगन तिन बड़े कान ।

मध भौनि उचिन उज्ययल ललान ॥

नित चरित कसौंकिरुअनि उदार ।

कालोरप विदप है नहि हमार ॥

पुनः

अंक ६

अथ विक्रमभक्त

(दम्बर विमानों पर चढ़े विषाधर और विषाधरी का प्रवेश)

वि०—अहां, धम्ममय कलह के कारण परम प्रचण्ड धम्मण्ड
सायनेज में दीप्त इन सूर्यवशी कुमारों के विक्रम-युक्त
विचित्र-चरित्रों ने मध सुगामुगों को कैसा विमोहित कर
लिया है क्योंकि हे प्रिया, देवों—

रुत मनन कंकन मन क्वनित कत कंकनीक विमाल ।

ह्यु छोर मन लगि, जानु गुन, धति करति मन्द कराल ॥

धनु तानि धम, मर तजन, जित निग्न निरत चंचल-चार ।

अनभयद अद्भुत तित शोशन मधि वदत युद्ध अवार ॥ १ ॥

दोह कुँवरनु के कल्पान काज ।

हुन हुन हुन्दुभि नम वजनि छाज ॥

गम्भीर जानु सुग-ईन रोर ।

जनु मरन मधन धन धन करोर ॥ २ ॥

इसमें चलो हम भी, इन दोनों वीरों पर सुन्दर प्रफुल्लित
स्वर्णमय सरोजों में निहित, मधुर-मकरन्द-सुगन्धित,
कल्पतरु, मन्दाग आदि दिव्य-वृक्षों के नवीन मणि सरोजों
स्वच्छ कमनीय-कलित-पुष्पों की निरन्तर सानन्द सयन
वर्षा करें ।

मानों साक्षात् भगवान् अग्निदेव चले आ रहे हैं। चारों ओर वह ऊँची का प्रचण्ड प्रनाप फैल रहा है। अब तो ज्वाला नहीं नहीं जानी, इसलिए प्यारों को अपने पार्श्व में डिपारकर यहाँ से यहाँ दूर भागना चाहिए।

(वैसा ही करता है)

विशाधरी—आहा प्राणनाथ ! मञ्जु-सुकुमाल सम शीतल मृदुल तुम्हारे पुष्पाय शरीर के स्पर्श से आनन्दोल्लासित मुक्त अधस्तुं दे तरल नयनों वाली का सन्नाप अब दूर हो गया है।

वि०—प्यारी, भला मैंने इस में क्या किया, अबवा—

पर बहू न बरै तऊ मर्यश,
यसि मर्यास मर्य विपदा हरै।

मुदर जो कहूँ जानु जहान में,

अयसि सो तिहि जंचनमुरि है ॥ २ ॥

विशाधरी०—चमचमती चरला की चचल चमकयुक्त मतवाले मधुरों के फट गरीखे सघन-प्यासल धराधरी से यह आकाश-भरतन क्या व्यंग्य हा रहा है ?

वि०—आहा ! अथवा ये कुमार लव द्वारा चलाये हुए बरुणास्त्र का प्रभाव है, देखा (य ग) । कम प्रकार महसूस निरन्तर मृगलधाराओं के पड़ने से प वक्रान्त्र टट्टा हो गया।

वि०धरी०—यह दहे आनन्द की बात हूँ

वि०—आय हाय ! अति मय की घुरीहानी है क्योंकि प्रचल आधी के जोर से चारों ओर उमड़ते-धुमड़ने घुमघुम कर घनघोर मचाते काले मनवाले मैघों के सघन गाढ़ान्धकार में घंथा

वः—प्रिय, ये मेरे आराध-परण पूज्य तात हैं।

तः—मैं तुम्हारे लगते हैं वेने ही हमारे भी लगे, क्योंकि जब तो हमें मित्र मान चुके हो न ? किन्तु रामायण के बरिचनापक तो चार पुरुष हैं जिनमें से प्रत्येक को तुम इसी पद (तात) से मन्थोधन कर सकते हो इन-लिन बनसाइये यह उनमें से कौनसे हैं ?

वः—ये हमारे सबसे बड़े तात हैं।

तः—(वहान मे) कृपा क्या ये रघुनाथजी हैं, आज का दिन बन्ध है जो इनका दर्शन हुआ (विरप और कौतुक से देख कर) है तात, यह धान्मीरि जी का शिष्य आपको प्रदान करता है।

वः—जाओ प्यारे जाओ, दत्त करो बेटा बहुत विनय होचुरी, जाओ शरदार मेरे हृदय से लगाकर आनन्द दो—

बद ललित प्रसुलित कमल कोमल गर्भ-दल अनुहार ।

नर परम सुन्दर धाम सुगन्ध सुभग सुखि सुहृन्तार ॥

धन्यवार बंधन लेख मन सीतल दुषद प्रनद ।

मन संग मों लभि देत प्रिय अनुपम परम आनन्द ॥१३॥

वः—(आप हों प्रार) इनका स्नेह तो देवों जकारण ही में उपर कितना आधिक है। और फिर भी मैंने दे सनसे-बुझे इनमें इतना दूर बड़ा लिना कि शत्रुमहण करने तक की नौपत पहुँच गई (प्रणद) तात, जारा है कि आप मेरी इन बचलवा को हट लमा करोगे।



तदन्तर इन मन्त्रों गूढ़ विद्या को भगवान् कृशाच्य ने
 महान् वर्ष में भी उपर से या परने वाले शिष्य विस्था-
 मित्र के हेतु प्रदान किया और उनके प्रसाद में हमने
 सीखा, यह तो पहला क्रम है। फिर तुमको किमन वत-
 नाया वह हम जानना चाहते हैं।

न०—आप से आप हम दोनों को यह कर्म सिद्ध हो गये।

ग०—(पिचर कर) इसलभय कुछ नहीं, परम-पुरुष-पत्न को
 यह कोई महिमा है परन्तु द्विवचन का प्रयोग तुमने क्यों
 किया?

न०—हम दो भाई हैं जो एक ही साथ जन्मे थे।

ग०—तो यह दूसरा यही है?

(नेत्रमंथन में)

(नासिकापन, भासिकापन !)

का चिरंजीव स्वयं मंग, कथोर।

नृप-मेन करत समान धोर।

निप सत्ता, धनायहु सकल भेष।

का कहत ! 'कजी यह सचनेव' ॥

मो कष विभुवन सधि भासमान।

'कधिराज' शब्द हो नासवान ॥

कप्रिय ज्ञानपुत्र धनत्र कान्ति।

याही जिन मी दम होइ शान्ति ॥१३॥

न०—इन्द्रमर्षी-की-सी स्थान-पुत्र, यह को है मनोहर धारण करती।

जो कलकंठ की संडुपुत्री मुनि, गान सब पुत्रकामत हमारी ॥

(रोकर) तो इनमें किसी उपाय में पहुँचें कि वे दोनों किसके बालक हैं।

ल०—तात वह क्या बात है जो:—

जग मंगलप्रद बदन तुम, नयन नीर-कन धारि ।
घोमविन्दु-सुत कंजरी, धरत मंजु उनहारि ॥२६॥

कु०—मैया,

मिटादेवी बिना रघुनन्दन को पहुँचा मय मोकहिसोक लगवाई ।
निज ध्यारी वियोग विधायीं तिन्हें, बनतुल्य सर्व जग देत दिगवाई ।
बुह मीनल प्रेम-मोद कहीं, धिरहागिसों हीतल तस सदाई ।
तुव नानी पढ़ी कबहुँ न रमावन पृथत ऐसे अजान की नाई ॥३०॥

रा०—(आप ही आप) हा, यह तो ऐसी बेलाग बात हुई जिसमें कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता, अब धस करा पूछने में क्या होगा? अरे दग्ध हृदय, ऐसा नू अकस्मात स्नेह में उदल पड़ा और एक साथ खुल गया कि लड़के भी तुम्ह पर तरस खाने लगे! अन्धा तो कुछ और छेड़ूँ (प्रगट) वत्स, तुम दोनों ने जो भगवान् वाल्मीकि की पवामयी मनाहारिणी रविपुलकीति-प्रभाविन्तारिणी रामायण पढ़ी है उसका कुछ अश कौनूहल-वश मुझे भी सुनने की इच्छा है।

कु०—वह सम्पूर्ण ग्रन्थ ही हमने पढ़ा है। लीजिए, बालकाण्ड के अन्तिम अध्याय में निम्नलिखित भाष के ये दो श्लोक स्मरण आते हैं!

रा०—अन्धा धोलो घेटा ।

जाकी करी मगहना, गुरुजन प्रमुदित हीय ।
 कवि व्यव्याह में तान की, धर्म मिलनी रमनीय ॥
 सो पितृमुख धर विपनि पद, पैमे देयत नैन ।
 किहि अभाग वस राम की, छाती छाजु फटै न ॥४०॥

(नेपथ्य में)

[हाय हाय]

बेषल नेज विरोध सों, होत जासु अतुमान ।
 एवि मलान धर्म रघुपनिहि, श्रीचक्र हीपहचान ॥
 परसे के मूर्धित परे, जनक मृपहिं चेंताप ॥
 सोक बिकान बेमुअगिरी, मानहु हा घषगाय ॥४१॥

शं.—हा नात, हा नाता, हा जनक !

निमिषंय छौर रघुधंय की जो सतत-मंगल वारिनी ।
 तिहुँ भुयन मधि वरमनीय कीरति-कीमुदी विगतारिनी ॥
 ता निरपराधिनि मीय हित पर निदुर पारी राम है ।
 सो मुक्य निरमोहीनु सं मुष मोर को बरा वरम है ॥
 (विपत बर) श्रीर जहा ता ... जत ही ... यदर
 अरु इनसे सिद्ध

(उदम है)

शुः श्रीर म०—१५४ म ल व १०० -

(बरता से ...)

अंक ७

[स्थान-रंगभूमि]

[क्षमण का प्रवेश]

लक्ष्मण—आज भगवान् वाल्मीकि जी ने हमें, तथा ब्राह्मण, क्षत्री आदि सम्पूर्ण पुरवासियों और सुरामुर नान किन्नर आदि ममम चराचर प्राणोमात्र को, अपने तपाचल के प्रभाव से एकत्रित किया है और महाराज राम ने आज्ञा दी है कि आज भगवान् वाल्मीकि अपना बनाया नाटक अम्भराओं में मिलवायेंगे उसे देखने के लिये हमारा भी निमन्त्रण है, सो गंगा जी के किनारे रंगभूमि रचनाकर सब दशकों का यथाचित प्रबन्ध कर गे। हमने मनुष्य देवता और सब जाति-समूह को यथा यथा स्थान में बैठा दिया, और—

जे नृप-धर्म के पावन में स्वयं-अनुरजनता सो छये है।
ता सर धारि तपोवन के मुनि-घोर-धर्म जग धन्य भये है ॥
धो वाल्मीकि महाशक्ति के कविता-गुन-गौरव-नेह भये हैं।
देखतु द्वारज-धन निरोजति राम यहाँ पुद् धार गये हैं ॥१॥

[श्री राम का प्रवेश]

रा०—वत्स लक्ष्मण, दशक तो सब अपने अपने स्थान पर बैठ गये न?

ल०—हाँजी, सब बैठ गये।

ग०—अच्छा तो इन प्यारे कुशा लव को भी कुमार चन्द्रकेतु के दरबार स्थान मिलना चाहिए ।

ल०—महाराज का स्नेह जानकर पहले ही इसका प्रबन्ध कर दिया गया है अब तो आप भी राजगद्दी पर घिराजिये ।

ग०—(चिंतन में)

ल०—अच्छा भाई, अब अपना नाटक प्रारम्भ करो ।

सूत्रधार—(सामने धापर)

महाशयगण, यथार्थवादी भगवान् चाल्मोकि अष्टि नप पगया प्राणोमात्र को आशा देने हैं, कि हमने अपनी प्राण-दृष्टि से देखकर अद्भुत करुणारस से पूर्ण यह जो पुत्र पथिव्य नाट्य-प्रबन्ध आपके सामने उपस्थित किया है, इसका तुलान्त नप सदा और बड़े महत्व का है; इसलिए आप सब लोगों को इसे सावधान होकर देखना चाहिए ।

ग०—अद्भुत टोक पदा, अति लाल सेने ही होवे है उनके लिए वेदल दिव्यदृष्टि से, क्या दृष्ट होकर क्या अदृष्ट नप धर्म प्रत्यक्ष ही के समान है । उन महाभाग का सुजानव उपर्यन्तकवाली, उभोनुक से परे गाय सुगन्धुष और होशमार्तिमार्तिना दायी विनी देना व विनी स्थान अदृष्ट विना वरुण से तथा बहरी, अत्यन्त उमरे सना वरुण सम्य है ।

(क्लेश में)

(हाथ-पंजुव ' हा कुला लवमल ' दुःख लवमार्तिनो के लवक दुःख लवमल है, इसलिए उमरी देना से दृष्टि

हुनी हूँ और चक्रेनी निराधर जंगल में पनी ।
 मुझे पारं. धर, भेदिये जाने को हीने है । हरे,
 धर में चभानिनी क्या उपाय करूँ ? कहीं कहीं
 निराधर हो गंगाभी में हूँ पकती हूँ ।

ल०—हाय यह तो कुछ और ही बात निकली ।

सू०—दिव्यभरति जो धरति, तामु तनया, मिय प्यारी ।
 निरपराधिनो, जो वह कों भूय राम निकारी ॥
 प्रमद-भेदन-विकल नयन सन नीर विभारति ।
 हाय हाय करि गग माहि अपने कों धरति ॥२॥

(निकलता है)

रा०—(पबदा कर) देवी देवी, तनिक टहरो !

ल०—महाराज यह तो नाटक है नाटक ।

रा०—हा देवी, दण्डक घनवास की प्यारी सखी, राम के
 कारण नुम्हारी यह दुर्दशा !

ल०—आय ! नाटक का अर्थ तो देखिये ।

रा०—यह आ राम ना वच की छानो किये देखने ही हैं ।

(पृथ्वी और गग एक एक झलक किये सीता के
 सम्हालनी दिगाई पवती है)

रा०—यन्म लजमण, जो कभी सुना न था सो मय आकर
 आज उपस्थित हुआ है । सम्हालो भैया, मैं मोहान्ध में
 हूँ वा जाना हूँ ।

दी० दे०—

गहि धीरव हीय सुना अपने, धर सोच कों मारी मरी जनि प्यारी ।
 विपदाय — काले की नहि कयो ~~काले~~ जग में

भा. तत्र जने इति वाक्ये वो जल भक्तिं पुनीति विन्दे तुलसी ।

इ. तत्र जने इति वाक्ये वो जल भक्तिं पुनीति विन्दे तुलसी ॥३॥

१. — जलो भाग जो दो पुत्र जन्मे, नाम कार्यपुत्रः (सूचित होती है)

२. — (कार्ये वा शिखर) कार्य, कार्य, जना भगवान् ने शिखर

शिखर वे, शकुन्तला के पन्थाग का शकुन्तला शिखर में शकुन्तला

का (शकुन्तला) नाम, तथा कार्य शकुन्तला ही रहे है शिखर

नेम के शकुन्तला का रहे है ।

३. — पुत्री शिखर भवे ।

४. — शकुन्तला पुत्र शीत ही शिखर में शीत है ।

५. — जल शकुन्तला शकुन्तला ही शकुन्तला शकुन्तला है ।

६. — शकुन्तला, ही शकुन्तला शकुन्तला है ।

७. — शकुन्तला, शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है शकुन्तला

शकुन्तला शकुन्तला है

८. — शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है

९. — शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है

१०. — शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है

११. — शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है

शकुन्तला शकुन्तला है

१२. — शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है

१३. — शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है

१४. — शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है

१५. — शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला है

का सम्पन्न सोइना अरुवन्त दुष्कर है, बेटी बेदेही और दो
 धमुम्भरा, धीरज धरो, अपने हृदय को मँभायो ।

पृ०—देवी गंगा, मीना की जनकर कैसे धीरज धरें—

मोर लखो गदि, जो गिपने दिवो राजम के बहुकाल विषय
 देने सहो चक जाय बनावहु ताही को दूमरो से बनयाम ।

ग०—या जग में विधवा, मजनी, बरनी निजहीय विचारन जोर ।

मो विधवा पुत्र देहं रई, नहिं ताहि मिशय मरै उन कोर ॥४॥

पृ०—टीक कहती हो, मानी पर क्या गामचन्द्र को यह उचिन धा
 हाय उम्होने यह न सोया रि —

भयो धवाह जा मग में, बालपने के भाहि ।

धरनी-मुना चयोमिजा, यामे पालह भाहि ॥

राजकपी जाहो जमक, तनक मिश्यायन मोम ।

नारक का बदि है मुना, तेयी त्रिपद चयोम ॥

सहा मो निहसन बरी, अग्नि-वरीन्द्या जामु ।

त्रिदि तन कति चंदन भई, धरनी कदा हुनागु ॥

भयो उरै बनयाम तड, तैत गरी जो रोइ ।

दिवो मुदगो नीच को, मरा चयनरो रोइ ॥

गिपरी तन बचपीन अति, हँसि तारी के भात ।

बारी मो तदुर्वन की, बरनीन नरै चयन ॥

दुदनी बरनीन से न कानु, तन बरनी वरिषयन ।

बनचनुई वरि काउ बी, तिलो न जाम चयन ॥१॥

सोः—हाय आर्यपुत्र की सुधि क्यों दिनाती हो।

पृः—हा श्रव भी आर्यपुत्र तेरे कुद्व लगते हैं ?

सोः—[लज्जा से घौंनू भरकर] तो जैसा माँ कहें ।

राः—(चलग) भगवती वसुन्धरा ठीक ! मैं इसी योग्य हूँ !!

गंः—प्रसन्न हो, भूतधात्री, आप तो संसार की देह हो, फिर भी
अज्ञान की भाँति अपने जमाता पर क्रोध करती हो ।

देविगः—

लोग सुगाहन में चरचा अपकीरति की अति फैलि रही है ।

लंका में अग्नि परीच्छा भई कोउ मानत ताहि यहाँ न सही है ॥

'राखे प्रजा अनुरजन को धन' या रघुवंश ने टेक गही है ।

ऐसी दसा में विचारे रघुपति कौं करनी तब काह चही है ॥ ६ ॥

लेः—देवताही प्राणियों के अन्तःकरण के मर्म को भली भाँति
जान सकते हैं, और विशेषकर गंगादेवी; इस कारण
भगवती आपको मेरा प्रणाम है ।

राः—सचमुच ही आपके अनुग्रह का प्रवाह महागज भागीरथ
के वंश में निरतर बहता रहता है ।

पृः—देवी भागीरथी, मे तुम्हारे ऊपर नित्य प्रसन्न ही हूँ परन्तु इस
लड़की का अमह्य दुःख देखकर छाती फटती है । मैं क्या
नहीं जानती है कि राम का प्रेम माता पर कितना है ?

पाव-ब्याहन के बहु-स्रोतों हैं व महा मन माहि दुःखारी ।

जानि बली जिन देवप्रकोर को देखस राम तर्जा मिय प्यारी ॥

जो अपनी मन राखि रहे, वह नामु अलीकिक धाँज ॥

और प्रजा-रुत-पुत्र्य-प्रसाप है, मजुल भूप मुनंगल

रा०—(आप ही आप) माता पिता लड़कों पर दया न करें तो कैसे काम चले ।

मी०—(रोती हुई हाथ जोड़कर) मा, मुझे अपने में लीन करलो ।

रा०—(आप ही आप) देखें और क्या कहें ?

ग०—नहीं बेटी ऐसा मन कहो, तुम सदस्य वर्ष तक अभी संसार में और रहो ।

पू०—बेटी अभी तो तुझे इन दशों को पालना है ।

मी०—मैं तो अनाथ हूँ फिर इनका कौन होगा ।

रा०—रें बड़-बड़य, अभीतक पटता नहीं ?

ग०—तुम तो बेटी, मनाथ हो, फिर अपने को अनाथ क्यों कहती हो ?

मी०— मैं अभागिनी हूँ, मनाथ किस प्रकार हों सजनी हूँ ।

दोना दे०—जगत की जय मंगल-कारिणी,

फिरहु क्यों चरहो अनाथनी ।

विमल पाव भिये मुख मग को,

बढ़नि सौं हमार 'पवित्रना ॥८८॥

ल०—(राम से) मनागत, मुनिये ये देखी क्या कह रही हैं ?

ग --गमार मुन ।

(नाथ से कुछ-कुछ जाग्र होता है)

रा०—दात तो कोई दंड आश्चर्य का है ।

मी०—अरे आकारा क्यों समझ उठा है !

दो० दे०—जान लिया—

किन्ति पाद सुनील हृदयस्य सौ,
 सुभय सुन्दर औमिक देव मे ।
 इति द्विदे मनभावत राम ह्ये,
 दत् विचारी स्वनिपय परन्त ।
 लयन दे तद ये तद सत्य है,
 धरमि श्रुभक सौ पुन-जानिये ।
 करि विविध सत् निरु संज्ञ जो,
 प्रकट प्रकट अये तद ही यहाँ ॥१॥

(नैराश मे)

लयन है सुनील हृदयस्य सौ,
 तम निरु पुन पुनरि कावयो ।
 सुय विरु विरुभव के अये,
 दत् निरु विरु सुनील मे ॥२॥

टीका—एक प्रकट से एक प्रकट देवता है । हा हा प्रकट सुनील
 हा प्रकट से हा प्रकट हा प्रकट हा है ।

टीका—एक प्रकट से एक प्रकट देवता है । हा हा प्रकट सुनील
 हा प्रकट से हा प्रकट हा प्रकट हा है ।

टीका—एक प्रकट से एक प्रकट देवता है । हा हा प्रकट सुनील
 हा प्रकट से हा प्रकट हा प्रकट हा है ।
 हा प्रकट से हा प्रकट हा प्रकट हा है ।
 हा प्रकट से हा प्रकट हा प्रकट हा है ।

अ ही धारा से एक महान् चरुण और चरित
उपस्थित होती है)

अ - (इच्छा) धारा

इति धा वर' धीर दमन नाग इति वपति ।
समदुर्गमाम् नो विडोक्ति इति मीमांसकः ॥
अथ नृप गच्छेत् अविमुक्तिं ननु के समुदायः)
अन्वयिष्युः समाह्वये अन्वयुः श्रीमन्नराय ॥
ननु मुनि देवीन दंत मुपकथय विद्वान् ।
इति अथ किं अस्मिन्मयी आह ! विद्या दामान् इति

(इति तेषाम्)

[अथ अस्मिन् मुनि वरि अस्मिन् अस्मिन्मयी ।
वीर्यं नृपकी पुत्रवत्तना विद्विष्येक-वस्मिन्मयी ॥
अथ अस्मिन् ही अथ न नृप अस्मिन् दिव जाती ।
अस्मिन् अस्मिन्मयी विद्विष्येक-वस्मिन्मयी] इति ॥

ब - -- यदा अथा हा अस्मिन्मयी है अथा धारा, अथा, (इति अ)
इति अथा ना अथा अथा अथा ही अथा है ।

अस्मिन्मयी ही हीना हा अथा)

ग - -- अथ अथा अथा अथा अथा अथा अथा अथा ।
अथ अथा अथा अथा अथा अथा अथा अथा ।
अथा अथा अथा अथा अथा अथा अथा अथा ।
अथा अथा अथा अथा अथा अथा अथा अथा ।

७:—[अह मे राम भवा राम के लीला पर राम कंठो है]

भावधान हो ! आर्यपुत्र, सावधान हो !

८:—[सीते सोलका आनन्द में] अहा, यह क्या है ?

[सीते को देख कुछ मुग्धगण्ड हर्ष और आनन्द में खिन्न]

क्या क्या है ? स्वप्न ? कि सपना ही पैरेही है ?

[फिर देखकर साज में] क्या मेरी माता, भगवती आनन्दनी,

श्रीश्रीश्री और शान्ता समेत सब दहे-पूरे प्रसन्न हो गये हैं ?

९:—यत्न ये देवी महाराज भार्गव के पुत्र की देवता, सर्वदा अनुग्रहीत भगवती भार्गवी है ।

[नेत्र्य में]

[जगन्भु रामचन्द्र स्मरण करो, तुमने विप्र देवने के सम्यक् कहा था कि हे गंगा माता ! तुम स्व सीता पर सर्वदा धरन्धरी के समान प्रदनी स्नेहमयी दृष्टि रखना सो मैं आज अपने बेटे से उच्चर हांगर ।]

१०:—हाँर ये देवा, तुम्हारी मान धनुन्धरा हैं ।

[फिर नेत्र्य में]

आधुम्न तुमने सीता स्वामने सम्यक् कहा था कि भगवती धनुन्धरा तुम धरनी प्यारी वेदी जानकी को देवती रहना तुम्हो सौचता हैं सो तुम भूरति होने से मेरे स्वामी के समान ही जनाता होने से मेरे पुत्र के समान हो इन्लिण मैंने तुम्हारा कहना कर दिया ।]

११:—तुम्हें जैसे महा आर्याधी पर देवियों न कैसे कृपा की ? मैं आप दोनों को प्रसन्न करवा है (चारों पर गिरते हैं)

[फिर नेत्र्य में]

१२:—... विविधा प्रकारों का कृष्ण मुख भोग करो ।]

२५—आप पुरुषार्थीगण, इस समय तिम प्रहार भगवती माता-
 रानी तथा देवी कमलादेवी न इतनी बधाई करके मुझ आत्मा-
 का भी भा भाग्य ही क्या भा आत्मनि प्रयत्न देना ही
 किया, इस क पदों भगवान् आत्मदेव द्वारा मीमांसे पुरुष-
 वर्णन को पुरीया का पुरी है । और अब भी वैदिक
 मन्त्रार्थक देव इस क गुणगान कर रहे हैं । अब आप स्वामी
 से पूछना एक है कि मेरी पुत्राल पतिव्रता यज्ञ से क्या
 मुझे परम प्रतिभु सवयग की व पुरीया देवी का फिर मन्त्र
 करता भी है या नहीं । इस विषय से आप भी क्या
 मन्त्र है ।

२६—इस प्रकार भगवती आत्मरानी के शिवांग से भी वह
 हाथ आप का पुरुषार्थी भगवती सवयग क, लाल मन्त्रार्थी
 व अन्य उक्त उक्त और इन्द्रगण, मन्त्रार्थक के साथ
 पर भी मन्त्रार्थ मन्त्र से प्रयत्न मीमांसे का क मन्त्र पर गुण
 यज्ञ है ।

२७—आपका शिवांग -

वह पुरुषार्थ मन्त्रार्थकी शिवांग से लाल
 मन्त्रार्थ का शिवांग का भी मन्त्रार्थ है ।
 व मन्त्रार्थ का शिवांग का भी मन्त्रार्थ है ।
 व मन्त्रार्थ का शिवांग का भी मन्त्रार्थ है ।

— आप का मन्त्र, व मन्त्रार्थ का मन्त्रार्थ है का मन्त्र
 मन्त्रार्थ का मन्त्रार्थ का मन्त्रार्थ मन्त्रार्थ है ।

२८—आपका शिवांग -

शब्दार्थ-प्रदीप

(अनेक छंद कलाधारक शब्द सुन्दरर पद्य के उन शब्दों के लक्षण तथा व्यंजनों कलना गया है जो प्रायः छंद की कला में प्रयुक्त हैं।)

श्लोक १—अभिजात-शुभावन = आदि कवि कलाके। राजकीन-निज-रसत-रिह = राज के लिये जो कवि लगी कला में रहने लगे होकर। शब्द-सूत्र-शुभावन = जो शब्द अनुभव में नहीं कहे केवल शब्दों में बताने होते हैं। शब्द-शुभावन = शब्दों, भावों, सुन्दर छंद।

श्लोक २—शुभावन-शुभावन-शुभावन = सुन्दर की मंगल के लिये कवि-मंगल। शिर-शुभावन = शिरों। शब्द = शब्द। मङ्गल-शुभावन = मङ्गल-शुभावन।

श्लोक ३—शुभावन = शब्दों। शब्द-शुभावन = कवि-शुभावन।

श्लोक ४—शुभावन = शब्दों। शब्द = शब्द (शब्द)।

शब्द = शब्द।

अंक १

श्लोक ५—शुभावन = सुन्दर कलाके = सुन्दर कलाके।

श्लोक ६—शुभावन = सुन्दर कलाके हैं, या सुन्दर कलाके हैं (शुभावन)।

श्लोक ७—शुभावन = सुन्दर कलाके हैं।

श्लोक ८—शुभावन = सुन्दर कलाके हैं।

श्लोक ९—शुभावन = सुन्दर कलाके हैं।

श्लोक १०—शुभावन (शुभावन) सुन्दर कलाके सुन्दर के लिये सुन्दर के लिये सुन्दर हैं। सुन्दर = सुन्दर हैं।

शृष्ट २२—पुरी चयाड = निन्दा । अनुल = अतोल । पूकर = कुत्ता ।
बिहार = नालत देना ।

शृष्ट २३—निरत = लगाहुद्या । परतीति = प्रतीत । निन्दुर =
निन्देय । मोदजर् = आनन्द पैदा करने वाली । स्नेह = (स्नेह) ।
परं = प्रति ।

शृष्ट २४—धीमण्ड = चन्दन । वृषा = प्यर्थ ।

शृष्ट २५—हियरा = हृदय ।

शृष्ट २६—कारज = कार्य । अद्यम = अद्यमान । अमीस = अशीष ।

अंक २

शृष्ट २७—अर्थ = चौदशोपचार में से एक; जज्ञ, दूध, दही, सरसों,
बुनाम, तंडुल और जी मिला कर देयता को देना । छाहरि में विरमाड =
दोह में दहरो । पराहर = पलाहार । काड = किसी दूसरे का ।

शृष्ट २८—वृत्ति = व्यवसाय । अगार पिदार = आगे पाँये । विज्ञ =
विज्ञेय । निदमत = रहते हैं । जगनधि = जग में । पारापय = आशोपान्त ।

शृष्ट २९—दशय अयमथा = बालपन । अपंय किये = दे दिये ।
सुग्ध = मोहित ।

शृष्ट ३०—वितरन = बाँटने हैं । बिरन आनाम = प्रवाल । टेल =
तेला । अनुपुप = = = के बिरन में २४ अक्षर का संगृहण दूद ।
बादेवी = सारंगवी, बाटी । विहात = विहात करते हैं । अरुणद = अरुणद ।

शृष्ट ३१—अपयोजि = अज्ञा । अज्ञानवाताधी = अज्ञानवाती ।
अज्ञान = विज्ञान, अज्ञान ही जग । अज्ञानि = अज्ञान (जग) का
जग । अज्ञानवात = अज्ञान का अज्ञान । अज्ञानि = अज्ञानवात ।

पृष्ठ ३४—गृही = (सूच्य) साक्षी । शिपो = इत्य । जल = जगत् ।
अभिसंश्लिष्य = मन्त्री द्वारा पवित्र किया हुआ ।

पृष्ठ ३५—अकालमुषु = समय का समाप्त । स्वराती = राम, लक्ष्मी
नाम के शिव का बीवी । कर्ण-पुत्र = कर्णों का समूह ।

पृष्ठ ३६—सुदृढि = क्षमा । गदाधर = कर्ण, कनारी । धर्मिणे =
पुत्र के माते हुए । कृष्णम = किलारे के रंग । ग्यायन = शिखा करने की ।
कृष्ण = कृष्ण । शिखर = शिखर । कृष्ण = शिखर ।

पृष्ठ ३७—सुव = कथान है । साहिनी = संसार-सागर से पर
करने वाली । सुव पचास = सुवनारी का इच्छा । प्रायः = प्रायः ।
सर्वत्र = विस्तृत । कर्ण = कर्ण २५ वांछे । भावन = शक्ति ।

पृष्ठ ३८—अंध = अंध । अंधी = अंधी । अंध = अंध । अंध =
अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध ।

पृष्ठ ३९—अंध = अंध । अंधी = अंधी । अंध = अंध । अंध =
अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध ।

पृष्ठ ४०—अंध = अंध । अंधी = अंधी । अंध = अंध । अंध =
अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध ।

पृष्ठ ४१—अंध = अंध । अंधी = अंधी । अंध = अंध । अंध =
अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध ।

पृष्ठ ४२—अंध = अंध । अंधी = अंधी । अंध = अंध । अंध =
अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध । अंध = अंध ।

वर्षों के धर्म । परिणेत = नदी का मोड़ । कुतिल
मिड = मिड (धर्म धर्म) । विप्रदान के प्रकारों
दिशते हैं ।

शुट ४४—संज्ञित = संज्ञितकर ।

शुट ४५—एक देवता = प्रतीक बनना । नृद = पुन । मत्त दाप =
मत्त का अभिमान । सिद्धुर = मिड कर ।

शुट ४६—नरि = शब्द करती हैं । उरंग = उर्वरी । मत्त
दाप = मत्त मत्त ।

अंक ३

शुट ४७—एक-दुद पद = एक दो मत्तों में मत्त कर बैठ लो
धर्म में मत्त का एक बनते हैं ।

शुट ४८—मरी-मं-कदु-मं-कदु = मरी के धर्मों में मं-कदु की धर्म ।
मत्त = मत्त का धर्म बनना ।

शुट ४९—मत्त = मत्त । मं-कदु - मत्त की हैं । मं-कदु = मं-कदु
में धर्म हुए । सिद्धुर = मत्तों हुए । मत्त = धर्म । मत्त = मत्त
मत्तों मत्तों = मत्तों के धर्म । मत्त = धर्म के धर्म
मत्त = मत्त हैं

शुट ५०—मत्त = मत्त का धर्म मत्त मत्त मत्त
मत्त । मत्त = मत्त

शुट ५१—मत्त = मत्त

शुट ५२—मत्त = मत्त का धर्म मत्त मत्त मत्त = मत्त मत्त

शुट ५३—मत्त = मत्त का धर्म मत्त मत्त मत्त = मत्त मत्त

मत्त मत्त = मत्त मत्त हैं ।

शुभ्र १०१—कमौटी = मोटा धरा सोना देखने का पत्थर ।

शुभ्र १०२—वाक-नामन = इन्द्र । पदानि = पैदल । चौबिगन = चकार्चाप होता है ।

शुभ्र १०३—रमातल-गरभगत-कुञ्जनि = पूखी के भीतर गुफाओं में । पुञ्जित-निमिर = हकट्टा किया हुआ चौबेरा । पित्रल = पीला । पीतर-नगन = लपी हुई पीतल के समान ।

शुभ्र १०४—कविल रह = कासा रह । धाराधर = धारा । वृशाम्ब = वृष के जामाता । उमगे = पैदा हुए ।

शुभ्र १०५—मुग्य मोरन—मुँह मोड़ना है ।

शुभ्र १०६—घनुमोदन = समर्पन करना ।

शुभ्र १०७—मरजाद = मर्जादा, सीमा । द्रवि दीन = भद्रा ।

शुभ्र १०८—कनुग्य = इन्द्राकुवरीय एक राजा । सकिता = मूर्ख ।

शुभ्र ११०—दरप = दर, अभिमान । लुञ्ज = हाथ पैर दिवित । लीनी = सुन्दर । कामकुहा = कामधेनु । धार्य = ऋषि प्रदीन, वैदिक । परग्य = परीक्षा ।

शुभ्र ११२—मुग्द-निय = ताड़का । काञ्जनिधन = काञ्ज के बंध में । कोरब = मोघ से पैदा । विदुर = रोपी । उग्र कोर कारे = तीव्र आत्मा वाले ।

अंश ३

शुभ्र ११३—कनिन = शब्द बनाना हुआ । किङ्कनी = कीचरी । गुन = होरी । मवि = मैं ।

श्लोक ११४—सिंहल-वर्ण = पीला रंग । ज्योतिर्नय = प्रकाशित ।
 क्लिप्ता = (विरचकनी) । शान्तेपात्र = जिसके बलाने से अग्निधर्म
 रंग हैं । मूर्ध = तल

श्लोक ११५—आनन्दोत्साहित = आनन्द में मग्न । जीवन-भूरि =
 जीवनों नाम की बूटी ।

श्लोक ११६—अत = जगते ही ।

श्लोक ११७—परलाड = त्वरा बराबरी । प्रशस्त = उत्कृष्ट ।
 ईश्वर्य = अस्मत्कार लिखा ।

श्लोक ११८—चन्द्रकान्त मनी = चन्द्रकान्त मणि ।

श्लोक ११९—गर्भदंत अनुहार = गर्भ के पत्तों के अनुसार । परत =
 रत्न । धनमार = कूर । अनंद = सुन्दर ।

श्लोक १२०—प्रकृति-अन्य सुभाष = स्वाभाविक । अचिरत = निरंतर ।
 इति = संप्रत्ययनयि ।

श्लोक १२१—अयोरे = बहुत । भेष = भेद, रहस्य । अधिराज =
 शान राजा, अश्वपत्तों । इन्द्रमनी = नीलम ।

श्लोक १२२—मिनाद = शब्द । दिव्यायुध उग्र = यह बाल जो
 ईश्वरों से प्राप्त हैं और कठोर हैं । अटला = पृथ्वी । येद रसावर = येद-
 रसों तनुद !

श्लोक १२३—पुण्यदरानं = जिनका दरानं पुण्य से मिलता है या
 जिनके दरानं से पुण्य होता है

श्लोक १२४—अश्लयन = महात्मा । रम्य = सुन्दर ।

श्लोक १२५—विलसदन = विविध (विलासत) । अननार्द्र = शोभा ।
 क्लोल = स्थिर ।

